॥ ओ३म् ॥

ज्ञान की गंगा

गुरुदेव—पं० प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न अजमेर

गुरुदेव—श्री अमर स्वामी जी शास्त्रार्थ केसरी

लेखक—धर्मवीर आर्य 'धर्मी' वैदिक धर्मभूषण
ग्राम व पोस्ट कलौंदा, जनपद गाजियाबाद

प्र०-रामचरण आर्य, ४ चाणक्य मार्ग, शाहदरा, दिल्ली।
नवम् वार] सं० २०४६ वि० दयानन्दाब्द १६५ [मूल्य ७/५०

* ओ३म् *

ज्ञान की गंगा

* छन्द नं०—१ *

है पूज्य पिता मेरा तू ही, और तू ही मेरी माता है।
है इष्ट मित्र मेरा तू ही, और तू ही मेरा भ्राता है॥
है विद्या का भण्डार तुही, और तू ही धन का दाता है।
है देवों का महादेव तुही, न्यू 'धर्मी' तुझको गाता है॥

* छन्द नं०—२ *

बिना हाथ रचना करता है, बिन पग आता जाता है।
बिना कान सबकी सुनता है, नैनों रहित लखाता है॥
बिना हृदय सब जग को जाने, जग उसको ना पाता है।
'धर्मी' ऐसा सर्वश्रेष्ठ वह, महापुरुष कहलाता है॥

* छन्द नं०—३ *

जो नष्ट धर्म को करता है, उसे नष्ट धर्म भी करता है।
जो धर्म की रक्षा करता है, तो धर्म कष्ट सब हरता है॥
इसलिये धर्म को मत मारे, मरने पर तू भी मरता है।
जन 'धर्मी' निर्भय विचरत हैं, पापी जन सबसे डरता है॥

* छन्द नं०—४ *

धन धरणि में रह जायेगा, गज घोड़े साथ न जायेंगे।
निज त्रिया गृह में रुदन करे, ना साथी साथ निभायेंगे॥
यह देह चिता में जर जावे, ना चिन्ह दृष्टि में आयेंगे।
हम 'धर्मी' जिसको धर्म कहैं, परलोक में संग में पायेंगे॥

* छन्द नं०—५ *

विद्वानों का मान नहीं, और मूरख का सत्कार जहां।
दुख ही दुख नित बढ़ते रहते, उलटे हों व्यवहार जहां॥
काल पड़े बीमारी आवे, रहती मारा मार वहां।
'धर्मी' जिससे नर अरु नारी, करते हा हा कार वहां॥

(तीन पद भोज चौथा चोर) छन्द नं०—६

हैं त्रिया सुन्दर सब घर में, जो मन को हरने हारी हैं।
हैं बन्धु सखा सब हित चिन्तक,और सेवक आज्ञाकारी हैं॥
हैं गज,घोड़े सब हृष्ट पुष्ट,जिन्हें देख चकित नर नारी हैं।
जब 'धर्मी' मृत्यु आवेगी, रह जांय यहां ये सारी हैं॥

* छन्द नं०—७ *

उन जन का जीवन क्या 'धर्मी' रहती हों दुष्टा नार जहां।
क्या मित्र मगन मन में होले,हो मूरख मित्र का प्यार जहां॥
क्या सिद्ध कार्य वहां का हो, नौकर हों मूंढ गंवार जहां।
क्या सुख की निद्रा आती है, सर्पों का हो घरबार जहां॥

※ छन्द नं०—८ ※

बात-बात पर क्रोध करे, नित कड़वे वचन सुनाता है ।
दरिद्रता का स्वामी है, निज घर में बैर बढ़ाता है ।।
नीचों का नित संग करे, कुलहीन की सेवा ठाता है ।
'धर्मवीर' ऐसा नर निश्चय, नर्क कुंड में जाता है ।।

※ छन्द नं०—९ ※

'धर्मवीर' भोजन से पहले, जो सज्जन नित दान करे ।
बाल वृद्ध और तरुण सभी संग, अपना मधुर बखान करे ।।
जैसे जितना कर सकता हो, सज्जन का सम्मान करे ।
गुरुदेव की सेवा ठावे, निश्चय स्वर्ग पयान करे ।।

※ छन्द नं०—१० ※

कुग्राम में जिसका बासा हो, कुलहीन की सेवा नित ठावे ।
नित रूखा सूखा भोजन हो, त्रिया भी उलटी बतलावे ।।
इकलौता पुत्र महामूरख, घर कन्या विधवा दुख पावे ।
ये छैओं 'धर्मी' जिसको हों, बिन पावक के ही जर जावे ।।

※ छन्दन०—११ ※

कूप नदी का जल सुन्दर भी, मेघ समान नहीं होता ।
हो बली आत्मिक जग कोई, उस सम बलवान् नहीं होता ।।
नेत्रों से बढ़ करके जग में, कोई तेज महान् नहीं होता ।
भारत सम 'धर्मी' बढ़ करके, जर्मन जापान नहीं होता ।।

* छन्द नं०-१२ *

नहीं राज्य कुराज्य भला जग में, बिन राजा ही सुखदाई है।
नहीं मित्र कुमित्र भला संग में, संग रहकर हो दुखदाई है ॥
नहीं शिष्य कुशिष्य से सुख होता, बिनशिष्यही सकलभलाई है।
नहीं दुष्ट भार्या घर अच्छी, दुष्टा संग रहत लड़ाई है ॥

* छन्द नं०-१३ *

ना घड़ी चैन से कर शोभा, कर शोभा दान से पाता है।
ना चन्दन से तन स्वच्छ बने, जल से पवित्र हो जाता है ॥
ना ज्ञान बिना मुक्ति होती, क्यों वृथा तिलक लगाता है।
ना मगन मान बिन हो 'धर्मी' क्यों हलवा खीर खिलाता है ॥

* (उद्दालक ऋषि से अश्वपति कहता है) छन्द-१४ *

मेरे राज्य में चोर नहीं कोई, मूरख मूंढ गंवार नहीं।
धर्म धनी सब ही बसते हैं, मदिरा से करें प्यार नहीं ॥
अग्निहोत्र घर-घर में करते, दुराचारणी नार नहीं।
'धर्मी' मैं भी धर्मी हूं, फिर भोजन क्यों स्वीकार नहीं ॥

* (विद्यार्थी को आठ अवगुण वर्जित) छन्द नं०-१५ *

ना काम की चाह रहे मन में, ना क्रोध का ठौर ठिकाना हो।
ना लेशमात्र भी लोभ करे, ना भक्ष्य में स्वाद मनाना हो ॥
ना तन का ही श्रृंगार करे, ना नाच रंग में जाना हो।
ना अति निद्रा ना सेवा हो, तब 'धर्मी' विद्या पाना हो ॥

*** छन्द नं०–१६ ***

प्रथम सुख 'धर्मी' वह होता, तन में ना बीमारी हो।
दूजा सुख उसको कहते हैं, घर में सम्पत्ति भारी हो॥
तीजा सुख वह कहलाता है, पतिव्रता निज नारी हो।
चौथा सुख घर का उजियारा, निज सुत आज्ञाकारी हो॥

*** छन्द नं०–१७ ***

आततताई चहे तरुण पुरुष हो, बुड्ढा या ब्रह्मचारी हो।
महा मूढ या पंडित हो, चहे वेद का परम पुजारी हो॥
सभी जनों का शिक्षक हो, और पूजा का अधिकारी हो।
'धर्मी' बिना विचारे मारे, पुण्य जगत् में भारी हो॥

*** (६–आततताई) छन्द नं०–१८ ***

किसी को विष के द्वारा मारें, किसी के आग लगाते हैं।
किसी के धन का हरण करते हैं, किसी का शीश उड़ाते हैं॥
कहीं किसी की भूमि छीनें, कहीं त्रिया बंहकाते हैं।
'धर्मी' ऐसे जन जग में, सब आततताई कहलाते हैं॥

*** छन्द नं०–१९ ***

ईर्ष्या घृणा करने वाले, जितने भी नर नारी हैं।
असन्तोष निश दिन रहते हैं, क्रोध मुखी जो भारी हैं॥
हर जन पै जो शंका करते, मांगें आयु सारी हैं।
'धर्मी' छः भांति के जन ये रहते बहुत दुखारी हैं॥

* छन्द नं०—२० *

घर वालों से मिल कर रहता, सज्जन का सन्मान करे ।
पर स्त्री माता सम समझे, ईश्वर का गुणगान करे ।।
चोरी चुगली दम्भ करे ना, मदिरा का ना पान करे ।
'धर्मी' ऐसा जन ही जग में, हर हृदय स्थान करे ।।

* छन्द नं०—२१ *

अपने सुख को पाकर 'धर्मी' ना मन में हरषाता है ।
दूजे जन को दुखी देख, ना मन में खुशी मनाता है ।।
औरों का उपकार करे, ना दे करके पछताता है ।
ऐसा जन ही जग के अन्दर, महापुरुष कहलाता है ।।

* छन्द नं०—२२ *

निन्दनीयों की निन्दा ना हो, पाप अधिक बढ़ जाता है ।
उनके संग में श्रेष्ठ मनुष्य भी, पाप का भार उठाता है ।।
कड़वा वचन कहे हितकारी, वो ही श्रेष्ठ कहाता है ।
'धर्मवीर' जब धर्म करे कोई, तब धर्मी कहलाता है ।।

* छन्द नं०—२३ *

मदिरा का ना पान करे अरु, ग्राम से बैर बढ़ावे ना ।
ताबेदारी से ना रूंठे, त्रिया को तरसावे ना ।।
राजा के संग झगड़ा करके, कोई भी सुख पावे ना ।
अधरम के मारग पर चलकर, 'धर्मी' कोई कहावे ना ।।

※ छन्द नं०—२४ ※

आशा हरती धीरज को, और जरा रूप को हरता है ।
नीच करे उत्पात सदा, और दूर धर्म को करता है ॥
कामी लज्जा त्याग करे, और कष्ट अनेकों भरता है ।
'धर्मी' धारण करे शील को, देश धर्म हित मरता है ॥

※ छन्द नं०—२५ ※

'धर्मी' सभा सभा नहीं होती, जिसमें कोई विद्वान् नहीं ।
'धर्मी' वह विद्वान् नहीं जो, करे धर्म का गान नहीं ॥
'धर्मी' धर्म नहीं है जिसमें, सत्य का शुभ स्थान नहीं ।
'धर्मी' सत्य नहीं होता जो, छल से रहित बखान नहीं ॥

※ छन्द नं०—२६ ※

मत नदियों का पता लगाओ, कहां से कैसे बहती है ।
पर त्रियों से बात करो ना, दुख सुख कैसे सहती है ॥
उन सन्तों का कुल ना पूछो, जिन में श्रद्धा रहती है ।
'धर्मवीर' इस में ही हित है, नीति ऐसे कहती है ॥

※ छन्द नं०—२७ ※

मित्र नहीं वह शत्रु हैं, जो मिलकर संग में घात करें ।
मीठा बनकर भेद पूछ लें, समय पड़े उत्पात करें ॥
'धर्मी' वो ही मित्र कहावें, दुख में भी जो साथ करें ।
खान पान पहरान एक हों, सदा एक सी बात करें ॥

* छन्द नं०—२८ *

रूप नष्ट नहीं होता उनका, करते जो जन शोग नहीं ।
बल बुद्धि और ज्ञान घटे ना, होता तन में रोग नहीं ।।
प्राप्त वस्तु सब प्राप्त होत है, टल सकता कभी भोग नहीं ।
'धर्मी' ऐसे सज्जन-जन से, घृणा करते लोग नहीं ।।

* छन्द नं०—२९ *

'धर्मी' कुल की रक्षा कारण, तज दे मित्र सहाई को ।
ग्राम की रक्षा के हित तजदे, मात पिता और भाई को ।।
निजी नगर का त्यागन करदे, समझ के देश भलाई को ।
सभी देश का त्यागन करदे, लख कर निज कठिनाई को ।।

* छन्द नं०—३० *

पेट पुजारी और निठल्ला, निन्दा कर सकुचावे ना ।
मनुष्यता का मान करे ना, सीधे मारग धावे ना ।।
देश काल को ना पहचाने, पहने अच्छा खावे ना ।
'धर्मी' ऐसे नीच मनुष्य को, कोई पास बिठावे ना ।।

* छन्द नं०—३१ *

अग्नि का उपचार नीर से, धूप का साधन छाता है ।
अंकुश से हाथी वश होता, रोग दवा से जाता है ।।
डण्डा औषध गधे बैल की, सीधा मार्ग चलाता है ।
सबका हैं उपचार जगत् में, मूढ़ का कुछ ना पाता है ।।

* छन्द नं०—३२ *

विद्या से जो वंचित जन है, अरु करता तप दान नहीं ।
धर्म नहीं गुण शील नहीं,और हित अनहित का ज्ञान नहीं ।।
मरे हुये के तुल्य मनुष्य वह, पाता कहीं पर मान नहीं ।
'धर्मवीर' पशुओं से नीचा, कहो उसे इन्सान नहीं ।।

* छन्द नं०—३३ *

विद्या ही है रूप मनुष्य का, विद्या यश फैलाती है ।
विद्या ही धन छुपा पास में, विद्या गुरु बनाती है ।।
विद्या ही है इष्ट मित्र, अरु दूर देश में साथी है ।
विद्या से हीं मनुष्य जाति, बिन विद्या पशु कहाती है ।।

* छन्द नं०—३४ *

संगत जन को बुद्धि देती, जड़ता दूर हटाती है ।
संगत सबको ऊंचा करती, वाणी मधुर बनाती है ।।
संगत से प्रफुल्लित मन हों, जड़ से पाप नशाती है ।
संगत से 'धर्मी' बन जाता, मुक्ति द्वार दिखाती है ।।

* छन्द नं०—३५ *

लक्ष्मी जिसके पास बसत है, वह जन बड़ा कहाता है ।
वो ही सच्चा पंडित है और वेद शास्त्र का ज्ञाता है ।।
उसको ही गुणवान् कहें, उपदेश उसी का भाता है ।
'धर्मवीर' धन के ही कारण, गीत धनी के गाता है ।।

* छन्द नं०—३६ *

जिसके मन में लोभ बसे, उसे अवगुण और कमाना क्या।
नित ही सत उपदेश करे जो, उसे तीर्थ पै जाना क्या॥
अपयश जिसका फैला उसको; मृत्यु से भय खाना क्या।
'धर्मवीर' जब धर्मी है, तब एक को मित्र बनाना क्या॥

* छन्द नं०—३७ *

संगत का जो प्रेमी है और गुण हृदय में धरता है।
विद्या का अभिलाषी पूरा, मान गुरु का करता है॥
निज त्रिया से प्रेम करे, और निन्दा से नित डरता है।
'धर्मवीर' ऐसा जन जग में, कष्ट और के हरता है॥

* छन्द नं०—३८ *

दुख में धीरज, दीन दुखी पर, अपनी दया दिखाते हैं।
चतुराई से बात करें और, रण में बल दिखलाते हैं॥
यश की नित अभिलाषा करते, गीत ईश के गाते हैं।
'धर्मवीर' ऐसे जन जग में, सच्चे देव कहाते हैं॥

* छन्द नं०—३९ *

मात पिता की आज्ञा पाले, सबसे प्रेम बढ़ाता है।
जो स्वामी की करे भलाई, वह त्रिया सुख दाता है॥
सच्चा मित्र उसे कहते, जो दुख में साथ निभाता है।
'धर्मवीर' इन तीनों को कोई, पुण्यवान ही पाता है॥

* छन्द नं०—४० *

ज्यूं ज्यूं वृक्ष फले है त्यूं त्यूं ,नीचे को झुक जाता है।
ज्यूं ज्यूं बादल भारी होता, त्यूं त्यूं नीचें आता है।।
ज्यूं ज्यूं सज्जन धनी होत है, त्यूं त्यूं शीश झुकाता है।
सज्जन जन में 'धर्मवीर' यह भाव सदा ही पाता है।।

* छन्द नं०—४१ *

सन्मारग पर सदा चलावे, पाप से नित्य बचाता है।
गुण को प्रकट करता है और, बातें गुप्त छिपाता है।।
आपत्ति में त्याग करे ना, काम समय पर आता है।
'धर्मवीर' ऐसा सज्जन ही, सच्चा मित्र कहाता है।।

* छन्द नं०—४२ *

'धर्मी' मगन न प्रशंसा में, निन्दा से घबराते ना।
लक्ष्मी रहे या रूंठ चली जा, उसका शोक मनाते ना।।
युग युग जीवें तुरत मरें या, मृत्यु का भय खाते ना।
उचित मार्ग से धीर मनुष्य, कभी पीछे पैर हटाते ना।।

* छन्द नं०—४३ *

पात करील पै ना लगते फिर, ऋतु का दोष बतावे को।
उल्लू को यदि ना दीखे, सूरज दोषी ठहरावे को।।
चातक के मुख बूंद पड़े ना, दोष मेघ को लावे को।
विधना ने जो लेख लिखा, उसे 'धर्मी' और मिटावे को।।

※ छन्द नं०–४४ ※

जिसके पिछले कर्म भले हैं, मन में उसे बसावे क्या।
अनगिन जिसके साथी होते, शत्रु उसे सतावे क्या॥
निश दिन रत्न रहें हाथों में, चोर लूट ले जावे क्या।
'धर्मी' जन प्रशंसा करते, दोषी दोष लगावे क्या॥

※ छन्द नं०–४५ ※

बुरा बुढ़ापा खाल सुकड़जा, गति नष्ट हो जाती है।
दांत गिरें और कान सुने ना, आंख ना मार्ग दिखाती है॥
मुख से राल टपकती रहती, बन्धु भी ना साथी है।
बेटा बैरी बन जाता, त्रिया ना सेवा ठाती है॥

※ छन्द नं०–४६ ※

तन में अनगिन रोग रहें और औरों का उपचार करे।
सबसे कहे मैं कनक कमाऊं भोजन और के द्वार करे॥
सबसे कहे मैं योगीराज हूँ दुराचार से प्यार करे।
'धर्मवीर' ऐसे जन का ना पत कोई नर नार करे॥

※ छन्द नं०–४७ ※

दरिद्रता ना पास फटकती जो जन नित व्यापार करे।
मन में उसके पाप नहीं हो ईश को जो आधार करे॥
उसको शोक नहीं होता जो मौन व्रत स्वीकार करे।
'धर्मवीर' भय नहीं हो उसको जो जनता से प्यार करे॥

※ छन्द नं०—४८ ※

हरदम लड़ने वाली से तो घर में फूअर-नार भली ।
सततम् रोगी रहने से तो रहनी जिन्दगी ख्वार भली ।।
लात मार जो दूध खिडादे उससे बिना दुधार भली ।
बीस निरर्थक से तो 'धर्मी' कली बनानी चार भली ।।

※ छन्द नं०—४९ ※

उत्तम नारी वह कहलाती पति की आज्ञाकारी हो ।
दूजी वह जो मात पिता सम जिसको दुनिया सारी हो ।।
तीजी वह जो जार पुरुष बिन रहती अधिक दुखारी हो ।
'धर्मी' चौथी कुल के कारण सहती दुखड़ा भारी हो ।।

※ छन्द नं०—५० ※

द्वार-द्वार का भिक्षुक जो है मान कहीं पर पाता ना ।
धनी मनुष्य जो कृपण होता यश उसका कोई गाता ना ।।
सेवा कर निर्वाह करे जो सुख से रात बिताता ना ।
'धर्मवीर' व्यभिचारी जन को घर में कोई बिठाता ना ।।

※ (७—पाताल) छन्द नं०—५१ ※

प्रथम तल है अतल दूसरा तीजा वितल बताते हैं ।
तीन नाम यह बतला दीने चौथा सुतल सुनाते हैं ।।
पंचम नाम तलातल है और छठवां आगे गाते हैं ।
जिसका नाम रसातल है पाताल सातवां पाते हैं ।।

* (७–द्वीप) छन्द नं०–५२ *

'धर्मी' द्वीप सप्त होते हैं उनको भी तुम याद करो ।
प्रथम कुश और क्रौंच दूसरा व्यर्थ ना वाद विवाद करो ॥
तीजा शाक, शालमली चौथा उच्च स्वरों से नाद करो ।
पुष्कर, प्लक्ष सातवां जम्बू गिन पूरी तादाद करो ॥

* (९–खन्ड) छन्द नं०–५३ *

'धर्मवीर' तुम ध्यानपूर्वक नव खण्डों के नाम सुनो ।
कुरु, हरि और भरत तीसरा सभी पुरुष और वाम सुनो ॥
इलावृत्त है चौथा और भद्राश्व नाम सुख धाम सुनो ।
केतुमाल, किमपुरुष, हिरणमय, रम्यक नाम तमाम सुनो ॥

* (४–युग) छन्द–५४ *

चार लाख-बत्तीस सहस्र का कलियुग समय कहाया है ।
इससे पीछे दूना द्वापर पीछे कलियुग आया है ॥
कलियुग से त्रेता का भी तिगुणा समय बताया है ।
'धर्मी' कलियुग काल से सतयुग चार गुणा कहलाया है ॥

* छन्द नं०–५५ *

'धर्मी' प्यार से जो पलता है वह बालक ना मोटा हो ।
जिस लड़के का बाप नहीं वह लड़का निश्चय खोटा हो ॥
प्यार नहीं परिवार में होता जिस घर अन्दर टोटा हो ।
शत्रु नहीं निकट में आवे जिसके कर में सोटा हो ॥

* छन्द नं०—५६ *

कन्या ही के सम होती है छोटी बहन दुलारी जो।
कन्या ही के सम होती है लघु भ्रात की प्यारी जो॥
कन्या ही के सम होती है अपने सुत की नारी जो।
सब ही सत्य समझियो सारे कहे 'धर्मी' प्रचारी जो॥

* छन्द नं०—५७ *

'धर्मी' नहीं सफलता मिलती जिसको कपटी यार मिले।
नहीं पेट भर भोजन पाता जिसको खोटी नार मिले॥
नहीं सुखी वह रहता जिसको सेवक शठ बदकार मिले।
नहीं भिखारी भवन बनावे जो कृपण दातार मिले॥

* छन्द नं०—५८ *

औरों का अपमान करे जो उसको मिलता मान कहां।
दिन भर झगड़ा करता रहता रात को सुख स्थान कहां॥
प्राणी मात्र से बैर बांधता हृदय में भगवान् कहां।
चित्त में चिन्ता व्यापी 'धर्मी' सन्ध्या में फिर ध्यान कहां॥

* छन्द नं०—५९ *

रेत पवन के संग मिलने पर नभ मण्डल में जाता है।
पानी के संग मिल जाने पर फिर भूमि पर आता है॥
धुंवा इतना कड़वा होता नहीं किसी को भाता है।
अगर तगर संग मिल जाने पर 'धर्मी' खूब सुहाता है॥

* (१२–मल) छन्द नं०–६० *

'धर्मी' बारह भांति के मल हैं जो तेरे तन रहते हैं।
सारे तन से बहे पसीना आंख से आंसू बहते हैं।।
मज्जा, मेद, रुधिर और विष्ठा शुक्र को मल ही कहते हैं।
मूत्र, ढीड और रहंट गूग का, कफ का दुख भी सहते हैं।।

* छन्द नं०–६१ *

बाल्यकाल में पिता के घर में कहन पिता का करती है।
यौवन काल करे पति सेवा नहीं किसी से लड़ती है।।
वृद्धावस्था शिक्षा देकर सुत के दुख को हरती है।
'धर्मवीर' स्वाधीन रहे ना जब तक भी वह मरती है।।

* छन्द नं०–६२ *

जो संन्यासी वैर त्याग कर प्राणी मात्र से प्यार करे।
दुर्व्यसनों से दूर रहे अरु निज मन पर अधिकार करे।।
योग का जो अभ्यासी हो और वेद का नित प्रचार करे।
'धर्मवीर' ऐसा संन्यासी भव से बेड़ा पार करे।।

* छन्द नं०–६३ *

ब्रह्मचारी को चाहिए 'धर्मी' तन पर उबटन लावे ना।
आंखों में ना काजल लावे जूता पहन के जावे ना।।
काम, क्रोध, मद लोभ छोड़ दे छाता कभी लगावे ना।
नाच रंग में कभी ना जावे गन्दे गाने गावे ना।।

*** छन्द नं०—६४ ***

झूंठा जो अभिमान त्याग कर वृद्ध जनों का मान करे।
धन से भरे कोष को पाकर दीन दुखी का ध्यान करे॥
चालाकी मक्कारी तजकर धर्म का नित्य बखान करे।
'धर्मवीर' ऐसे जन का जग आठ पहर गुणगान करे॥

*** छन्द नं०—६५ ***

जिस घर में ना दूध मथन के शब्द सुनाई आते हैं।
जिस घर में ना छोटे छोटे बाल खेलते पाते हैं॥
जिस घर में ना गुरुजनों के गुण गौरव को गाते हैं।
ऐसे घर को 'धर्मी' जन सब वन के तुल्य बताते हैं॥

*** छन्द नं०—६६ ***

घर आये साधु जन का करता जो तिरस्कार नहीं।
बिना भजन के भोजन को जो होता कभी तैयार नहीं॥
देशद्रोही दुष्ट जनों से करता जो कभी प्यार नहीं।
'धर्मी' सदा सुखी रहता है होता जीवन ख्वार नहीं॥

*** छन्द नं०—६७ ***

मात पिता और वृद्ध जनों की जो नित सेवा करता है।
'धर्मी' यश जग में फैले सदा मोद में भरता है॥
बल विद्या को प्राप्त होय और कष्ट और के हरता है।
सौ से आयु अधिक मिले और धर्म युद्ध में लड़ता है॥

※ छन्द नं०—६८ ※

जिस सभा के अन्दर धर्म सदा अधर्म से मारा जाता हो।
जिस सभा के अन्दर सत्य झूठ से हार सदा ही पाता हो॥
तिस पर भी हर एक सभासद् देख-देख हरषाता हो।
हर एक सभासद् मरे तुल्य, चहे चलता फिरता खाता हो॥

※ छन्द नं०—६९ ※

मत कुम्भकार के घर का खा मत गाड़ी जोतन हारे का।
मत धोबी के घर का खा मत मदिरा बेचन हारे का॥
मत रंडी भड़वों का खाना मत पत्थर पूजन हारे का।
मत 'धर्मी' अन्न कभी खाना, नृप नीति त्यागन हारे का॥

※ छन्द नं०—७० ※

कौवा जैसा चतुर बने अरु बगुला जैसा ध्यान करे।
कुत्ते जैसी निद्रा करले सूक्ष्म भोजन पान करे॥
अपना त्यागी वेष बनावे घर का ना गुण गान करे।
ऐसा ही बटु विद्या पावे 'धर्मी' सत्य बखान करे॥

※ छन्द नं०—७१ ※

जो जन चारों वेद पढ़े अरु और को वेद पढ़ाता है।
अपने घर में यज्ञ करे अरु और के यज्ञ रचाता है॥
निश दिन दीन को दान करे तब दान और से पाता है।
इन छः कर्मों से ही 'धर्मी' ब्राह्मण मनुज कहाता है॥

* छन्द नं०—७२ *

प्रजा की जो रक्षा करता और कहाता दानी जो।
अपने घर में यज्ञ करे और पढ़े वेद की वाणी जो॥
शक्ति का संचार करे व्यभिचार से करे ग्लानी जो।
'धर्मी' क्षत्रिय वही कहावे बने वीर बलवानी जो॥

* छन्द नं०—७३ *

वैश्य पशु का पालन करता, करता खेती क्यारी जो।
निश दिन घर में यज्ञ करे और दीनों का हितकारी जो॥
वेद पढ़न में भूल करे ना ऐसा है व्रतधारी जो।
देकर दूना कभी लेत ना कहलावे व्यापारी जो॥

* छन्द नं०—७४ *

जो जन विद्या नहीं पढ़े और मूरख मूढ गंवार रहे।
जीवन के निर्वाह हेत जो औरों के आधार रहे॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण तीनों का सहता भार रहे।
'धर्मी' वो ही शूद्र कहाता सेवा से जिसे प्यार रहे॥

* छन्द नं०—७५ *

'धर्मी' उसका मान नहीं जो धन बांधे तपधारी है।
बूढ़ा गृहस्थी, कामी निर्धन, जो हों होती ख्वारी है॥
रूप बिना जो वेश्या होती फिरती मारी मारी है।
सदा जगत् में निंदा होती नृप जो स्वेच्छाचारी है॥

* छन्द नं०—७६ *

जल के द्वारा देह मनुष्य का साफ शुद्ध हो जाता है।
सत्य बोल कर मन पवित्र हो निश दिन मोद मनाता है॥
विद्या तप से मनुज आत्मा सबका श्रेष्ठ कहाता है।
बुद्धि त्यूं त्यूं शुद्ध होत है ज्यूं ज्यूं ज्ञान बढ़ाता है॥

* छन्द नं०—७७ *

वर्ष सोलहवें ब्राह्मण बालक अपना मूंड मुंडाते हैं।
बाइसवें में क्षत्रिय बालक सारे बाल कटाते हैं॥
चौबीस से ना वैश्य बाल भी आगे बाल रखाते हैं।
दाढ़ी मूंछ कभी ना राखें ऐसा मनु बताते हैं॥

* छन्द नं०—७८ *

विष में अमृत मिला हुआ है अमृत उससे ग्रहण करो।
उत्तम वचन कहे जो बालक तब उसका सब कहन करो॥
सदाचार सिखलावे शत्रु उसकी सब कुछ सहन करो।
छोटा धाम सुगन्धित होवे उसमें अपना रहन करो॥

* छन्द नं०—७९ *

'धर्मी' वह जन मिट जाते जो वेद के हों विद्वान नहीं।
दुराचार में फंसे रहें जो पाते कहीं पर मान नहीं॥
आलस में जो पड़े रहें नित हो उनका कल्याण नहीं।
कैसे बुद्धि श्रेष्ठ रहे जब शुद्ध खान और पान नहीं॥

* छन्द नं०—८० *

युद्ध क्षेत्र में जाकर राजा शत्रु से जो लड़ता है।
जनता की करे देखभाल और कष्ट दुखी का हरता है॥
वेद प्रचारक विद्वानों का मान सदा ही करता है।
मरने पै मिले मोक्ष धाम और जीते जी सुख भरता है॥

* छन्द नं०—८१ *

जिस राजा के राज्य में निश दिन डाकू लूट मचाते हैं।
निर्दोषी प्रजा के जब सब भारी कष्ट उठाते हैं॥
अधिकारी उन्हें देख देख कर सारे खुशी मनाते हैं।
वह अधिकारी भूप सहित सब घोर नरक में जाते हैं॥

* छन्द नं०—८२ *

साहस भय दोनों ही जिनमें झूंठ से नित ही प्यार करें।
मूरखता मस्तक में बसती बिना बात तकरार करें॥
अशौच और चंचलता जिनमें माया रचकर त्यार करें।
निर्दयी भी इतनी होती हैं पति को मार पुकार करें॥

* छन्द नं०—८३ *

सोने में हो कुम्भकरण सा भोजन अधिक पचाता है।
सुनने में हो बहरा जैसा सिंह सम दौड़ लगाता है॥
डरने में हो गीदड़ जैसा चीज न कोई लखाता है।
रोना जाने चले ज्यूं पंगू सेवक श्रेष्ठ कहाता है॥

❋ छन्द नं०—८४ ❋

'धर्मी' जब २ जहां कहीं पर पाप अधिक बढ़ जाता है।
स्त्री इतनी दूषित होती पतिव्रत धर्म ना भाता है॥
जिस कुल में हों दूषित नारी नीच गति वह पाता है।
ऐसे कुल में हर एक जन ही नीच मनुष्य कहाता है॥

❋ छन्द नं०—८५ ❋

जिस के पास में धन होता है जग में बड़ा कहाता है।
उससे बड़ा बतावें उसको बन्धु बहुत से पाता है॥
उससे बड़ा हो आयु वाला कर्मी आगे जाता है।
'धर्मी' विद्या वाले के गुण गीत जगत् सब गाता है॥

❋ छन्द नं०—८६ ❋

जिस राजा के राज्य में 'धर्मी' मिलें चोर और जार नहीं।
सभी प्रेम की वाणी बोलें कड़वा बोलन हार नहीं॥
सब आज्ञा का पालन करते करे कोई इन्कार नहीं।
स्वर्ग समान वही रजधानी और स्वर्ग का द्वार नहीं॥

❋ छन्द नं०—८७ ❋

'धर्मवीर' यह परम पिता ने उज्ज्वल जगत् रचाया है।
प्रलय काल में श्री मनु ने अन्धकार बतलाया है॥
कैसा था और क्या कुछ था यह नहीं समझ में आया है।
ऋषि मुनि और साधु सन्त सब ही ने पता लगाया है॥

※ छन्द नं०—८८ ※

वेद की आज्ञा जो जन पालें ना वह कष्ट उठाते हैं।
दर्शन के अनुसार चलें जो सुक्ख सदा वह पाते हैं॥
जिनका हो आचार श्रेष्ठ वह सज्जन मनुष्य कहाते हैं।
सब के हो अनुकूल काम जो 'धर्मी' धर्म बताते हैं॥

※ छन्द नं०—८९ ※

जिनके पास में विद्या होती ब्राह्मण बड़ा कहाता है।
बल पौरुष के द्वारा क्षत्रिय मान जगत् में पाता है॥
वैश्य बड़ा वो ही कहलाता धन जो अधिक कमाता है।
आयु से ही शूद्र बड़ा न्यूं 'धर्मी' सत्य बताता है॥

※ छन्द नं०—९० ※

ब्रह्मचारी स्नान करे नित परम पिता का ध्यान करे।
ब्रह्मसूत्र को धारण करले गुरु जनों का मान करे॥
नित्य नियम से यज्ञ करे ना कभी किसी की हान करे।
'धर्मी' ऐसा ब्रह्मचारी ही जीवन का उत्थान करे॥

※ छन्द नं०—९१ ※

जिस जन में हो क्रोध अधिक ना बुद्धि उसमें पाती है।
जिसके चित्त में चिन्ता बसती आयु कम हो जाती है॥
जो जन रहता प्रफुल्लित मन चिन्ता नहीं सताती है।
जो जन करता नेकी निश दिन बदी निकट ना आती है॥

* छन्द नं०—९२ *

जो जन जाने कर्म भोग को फिर भी शोक मनाता है।
जो जन जाने नर्क स्वर्ग को फिर भी पाप कमाता है॥
जो जन जाने परम पिता को फिर भी हंसी उड़ाता है।
'धर्मी' ऐसा जन ही जग में महा मूंढ कहलाता है॥

* छन्द नं०—९३ *

जो जन जाने मोक्ष धाम को फिर भी यतन नहीं करता।
जो जन जाने पाप पुण्य को फिर भी झूठ से ना डरता॥
जो जन जाने दया धर्म को फिर भी दुखड़ा ना हरता।
'धर्मी' ऐसा मूढ़ मनुज ही नर्क कुण्ड का दुख भरता॥

* छन्द नं०—९४ *

जो जन मान करे औरों का, मान जगत् में पाता है।
जो जन धर्म में धन देता है दूना द्रव्य कमाता है॥
जो जन सेवा करे पूज्य की मोक्ष धाम को जाता है।
जो जन द्वेष करे ना 'धर्मी' गीत खुशी के गाता है॥

* छन्द नं०—९५ *

'धर्मी' सुखी नहीं रहता झूठे की मित्रताई से।
'धर्मी' रोग नहीं मिटता मूरख की दई दवाई से॥
धर्मी मान नहीं मिलता अधरम की करी कमाई से।
'धर्मी' जग में ना बसता लड़ता जो भाई भाई से॥

* छन्द नं०—९६ *

सभी सुखों से युक्त मनुष्य जो उसको सभी महान् कहैं।
सम्पत्ति से परिपूर्ण जो उसको कृपानिधान कहैं॥
जिसके यश की गाथा निश दिन ज्ञानी और नादान कहैं।
'धर्मी' और वैरागी को भी ज्ञानी को भगवान् कहैं॥

* छन्द नं०—९७ *

प्रीत की रीत निराली जग में नीर क्षीर हो जाता है।
क्षीर बिके तब साथ मित्र को अपने भात्र बिकाता है॥
किन्तु कपटी षटरस उनसे आ जब मेल मिलाता है।
समता इतनी दूर करे ना मेल फेर हो पाता है॥

* (७–लोक) छन्द नं०—९८ *

भुवर्लोक, भू लोक तीसरा स्वर्ग लोक बतलाते हैं।
महर्लोक, जन लोक पांचवां आगे और सुनाते हैं॥
सत्य लोक, तप लोक सातवां ऋषि मुनि फरमाते हैं।
सात लोक के नाम न्यूं 'धर्मी' गुणी गवैये गाते हैं॥

* छन्द नं०—९९ *

स्वर्ण की जो चोरी करता 'धर्मी' पतित कहाता है।
मदिरा के जो पीने वाला नीच गति को पाता है॥
गुरुपत्नी को पत्नी कहता महा पतित कहलाता है।
ब्राह्मण की जो हत्या करता घोर नरक में जाता है॥

* छन्द नं०—१०० *

अति निद्रा ना अति भोजन ना अधिक कभी स्नान करे।
नहीं जागरण कभी करे ना दुखियों का अपमान करे॥
नहीं लोभ के वश में हो, ना भय अरु शोक का ध्यान करे।
'धर्मी' ऐसा ब्रह्मचारी ही प्राप्त वेद का ज्ञान करे॥

* छन्द नं०—१०१ *

जिन तन स्वर्णाभूषण थे उनके तन कान न बाली रही।
जिन दीन दुखी धनवान् किये उनके घर थाल न थाली रही॥
जिनके कभी धेनु से घेर भरे उनके अब भेड़ न काली रही।
जिनके बहु बाग तड़ाग रहे उनके कुहूं कूप न नाली रही॥

* छन्द नं०—१०२ *

नीर बिना सूना सरवर है द्रव्य बिना सूना परिवार।
दान बिना सूनी सम्पत्ति सत्य बिना सूना व्यवहार॥
प्रेम बिना सूनी सुन्दरता स्वास्थ्य बिना सूना शृंगार।
धर्म बिना सूना है 'धर्मी' ज्ञान बिना सूना संसार॥

* छन्द नं०—१०३ *

मनुष्य को शोभित बाजूबन्द ना, ना शोभित मणिहार करे।
ना शोभित हो पुष्पमाल से ना शोभित शृंगार करे॥
ना शोभित हो श्याम केश से मांग चाहे दो चार करे।
शोभित होता वाणी से जो वाणी का संस्कार करे॥

* छन्द नं०—१०४ *

विद्या जिसके पास नहीं और करता कोई गुण गान नहीं।
ब्राह्मण की ना रक्षा करता दीनों को दे दान नहीं॥
इष्ट मित्र और निजी जनों में पाता जो सन्मान नहीं।
ऐसे जन का राज काज में होता कहीं स्थान नहीं॥

* छन्द नं०—१०५ *

आज्ञा का जो पालन करता वो ही पुत्र कहाता है।
पति की सेवा ठावे निश दिन तब त्रिया का नाता है॥
आपत्ति में साथ निभावे वो ही सच्चा भ्राता है।
'धर्मी' वो ही धर्मी है जो कष्ट धर्म हित ठाता है॥

* छन्द नं०—१०६ *

लड़के के जब लड़का हो जा, घर में रहना ना चहिये।
सुन्दर-सुन्दर वस्त्र त्यागदे तन पर गहना ना चहिये॥
खान पान के लिये किसी के घर पर कहना ना चहिये।
सबको 'धर्मी' सम समझे फिर भाई बहना ना चहिये॥

* छन्द नं०—१०७ *

पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करना चहिये।
विद्या पढ़ विद्वान् बने तब गृहस्थ में पग धरना चहिये॥
वानप्रस्थ ले वन में जावे घर पर ना मरना चहिये।
संन्यासी बन देश में विचरे अन्धकार हरना चहिये॥

* छन्द नं०—१०८ *

वन में रहकर वेद पढ़े और प्राणी मात्र से प्यार करे।
इन्द्रियों का दमन करे और विद्या का प्रचार करे॥
भूमि ऊपर बिस्तर लावे उत्तम ना आहार करे।
'धर्मी' जन जब पास में आवे यथायोग्य सत्कार करे॥

* छन्द नं०—१०९ *

बालापन में हो संन्यासी दुराचार से प्यार करे।
ऋषि मुनि बदनाम करे और अपनी मिट्टी ख्वार करे॥
बालापन से अपने मन पर जो पूरा अधिकार करे।
औरों का कल्याण करे और अपना बेड़ा पार करे॥

* छन्द नं०—११० *

'धर्मी' हो वैराग जिसे जब उसी दिना संन्यासी हो।
ब्रह्मचारी हो, गृहस्थी हो या वन का ही वनवासी हो॥
आयु बीस वर्ष होवे या पूरी साल पिचासी हो।
राजा हो या रंक कोई हो हाकम या चपरासी हो॥

* छन्द नं०—१११ *

संन्यासी को चहिये ऐसा नित ही प्राणायाम करे।
ओ३म् लगाकर व्याहृति से अपना पूरा काम करे॥
इन कामों को करते करते जींवन खतम तमाम करे।
ऐसा संन्यासी ही निश्चय मुक्ति अपना धाम करे॥

* छन्द नं०—११२ *

'धर्मी' जीव उसे कहते जिसमें ये लक्षण होते हैं।
हर वस्तु की इच्छा करते द्वेष में जीवन खोते हैं॥
कभी सुखी हों कभी दुखी हों मूंड पकड़ कर रोते हैं।
बढ़ने का प्रत्यन करें और ज्ञान में सुख से सोते हैं॥

* छन्द नं०—११३ *

सृष्टि का संहार करें और सृष्टि वही रचाते हैं।
इसका बदला किसी रूप में नहीं किसी से पाते हैं॥
नहीं कर्म के बन्धन में वो ऐसा पुरुष कहाते हैं।
शोक नैक ना पास में आवे 'धर्मी' न्यूं गुण गाते हैं॥

* छन्द नं०—११४ *

साधु बन ना सादा रहता तन का नित श्रृंगार करे।
वेद शास्त्र की कथा करे ना चिलम की धुवांधार करे॥
साग पात ना रोटी खावे दूध घृत आहार करे।
'धर्मी' ना वह साधु है जो सबसे ही तकरार करे॥

* छन्द नं०—११५ *

ईश्वर की जो आज्ञा 'धर्मी' उसको नित्य निभाया कर।
दुष्ट जनों की सदा दुष्टता करके यतन छुड़ाया कर॥
एक जगह पर नहीं ठहरना जगह जगह पर जाया कर।
इन कामों को करके ही संन्यासी श्रेष्ठ कहाया कर॥

* छन्द नं०—११६ *

प्रातः पानी पिये पेट भर तब भ्रमण को जाया कर।
शौच क्रिया कर,कर नित दातुन उसी समय फिर न्हाया कर॥
थोड़ा सा व्यायाम करे फिर बैठ ईश गुण गाया कर।
तब दुनियादारी में 'धर्मी' सारा दिवस बिताया कर॥

* छन्द नं०—११७ *

चार भांति के मिला पदार्थ सामग्री तैयार करें।
अग्नि में उसे डाल, डालकर चहुँ दिश में मंहकार करें॥
जिसके द्वारा भांति भांति के रोगों को मिस्मार करें।
यज्ञ हवन का घूम घूमकर 'धर्मी' जी प्रचार करें॥

* छन्द नं०—११८ *

ताल यदि अज्ञात हो 'धर्मी' उसमें बड़कर न्हाओ ना।
रांड लुगाई हो जिस घर में उस घर निश में जाओ ना॥
खीर का भोजन करना है तो दही साथ में खाओ ना।
दिक का रोग लगा हो तन में ऊंचे स्वर से गाओ ना॥

* छन्द नं०—११९ *

धर्म कर्म की देत दुहाई नित्य कमाई करता है।
जहां जनों में बैठ जाय वहां निजी बड़ाई करता है॥
पशु व पक्षी मारे खावे सदा लड़ाई करता है।
'धर्मी' ऐसा पाखण्डी ना कभी भलाई करता है॥

*** छन्द नं०—१२० ***

परम पिता की वाणी 'धर्मी' पढ़ी नहीं जब जाती है।
निश्चय जानो सभी जनों में चरित्रहीनता आती है।।
चरित्रहीनता को दुर्बलता जीवन भर खूब सताती है।
जैसा पावे वैसा खावे ना कोई उसका साथी है।।

*** छन्द नं०—१२१ ***

ईश्वर की है आज्ञा ऐसी नित्य नमस्ते कीया कर।
इसके तू अतिरिक्त दूसरा और नाम मत लीया कर।।
इसका उत्तर इसी नाम से सभी जनों को दीया कर।
ईश्वर को आधार मानकर 'धर्मी' जग में जीया कर।।

*** छन्द नं०—१२२ ***

सम्पत्ति से हीन मनुष्य जो मरा हुआ कहलाता है।
राष्ट्र मरा वह कहलाता है जिसमें भूप न पाता है।।
श्राद्ध मरा उसको कहते जो श्रद्धा रहित जिमाता है।
बिना दक्षिणा यज्ञ जो होता 'धर्मी' मरा कहाता है।।

*** छन्द नं०—१२३ ***

इन छः बातों वाला 'धर्मी' गुणी भूप कहलाता है।
समय पड़े पर सन्धि करले समय पै युद्ध मचाता है।।
अवसर पाकर हमला करदे कभी बैठ चुप जाता है।
बलवानों से वैर करे ना छल नीति अपनाता है।।

*** छन्द नं०—१२४ ***

श्रेष्ठ भूप वो ही जग में जो भूमि उपज बढ़ाता है।
पुल बनवावे हाथी राखे उत्तम दुर्ग बनाता है॥
आधीनों से कर लेवे व्यापार में हाथ बढ़ाता है।
जंगल काटे शहर बसावे अन्न कोष में पाता है॥

*** छन्द नं०—१२५ ***

सज्जन गृहस्थी जन को चहिये पतित को पास बिठावे ना।
दुष्ट कर्म जो करने हारे उनको साथ लगावे ना॥
मिथ्यावादी नट कन्जर को अपना मित्र बनावे ना।
'धर्मी' दम्भी जन के संग में जीवन कभी बितावे ना॥

*** छन्द नं०—१२६ ***

खर के सींग नहीं होता चाहे खर के सींग उपज आवे।
ऊसर अन्न नहीं होता चाहे ऊसर भूमि लहरावे॥
वन्ध्या, पुत्र नहीं होता चाहे वह भी सुन्दर सुत जावे।
यह सब कुछ 'धर्मी' हो सकता पर नार का पार नहीं पावे॥

*** छन्द नं०—१२७ ***

शोक से बढ़कर दुनिया में ना शत्रु और कहाता है।
जंह पर रहता शोक वहां पर धीरज निकट न आता है॥
शास्त्र ज्ञान का लेश मात्र भी ज्ञान न रहने पाता है।
निश्चय समझो शोक ही 'धर्मी' सर्वनाश का दाता है॥

* छन्द नं०—१२८ *

वेद का नित ही पाठ करो और अग्निहोत्र अनुष्ठान करो ।
भोग भी अच्छा भोगो निश दिन शेष को अपना दान करो ।।
स्त्री को सन्तुष्ट करो और यथाविधि सन्तान करो ।
सदाचार का जीवन 'धर्मी' याद सदा भगवान् करो ।।

* छन्द नं०—१२९ *

अल्प करे प्रयास कार्य शीघ्र सफल हो जाता है ।
उसे सिद्ध करने के कारण कुछ ना देर लगाता है ।।
मन्त्री से जो बात करे ना बात और सुन पाता है ।
ऐसा भूप और भूपों से 'धर्मी' मार न खाता है ।।

* छन्द नं०—१३० *

सहस्र मूर्ख भी अच्छे ना हों अच्छा एक विद्वान् रहे ।
अनगिन कृपण धनी न अच्छे अच्छा एक धनवान् रहे ।।
असंख्य निर्बल अच्छे ना हों अच्छा एक बलवान् रहे ।।
खुट्टल अस्त्र अनेक न अच्छे अच्छा 'धर्मी' बाण रहे ।।

* छन्द नं०—१३१ *

कौन सूई से आंख खुजाकर आंख का हल्का भार करे ।
कौन गले में पत्थर लटका सात समुद्र पार करे ।।
कौन छुरा से जीभ साफ कर सुख से निज आहार करे ।
कौन भला कांटों पर 'धर्मी' नींद से अपनी प्यार करे ।।

* छन्द नं०–१३२ *

धैर्यवान् जो 'धर्मी' होता दुःख में धीरज धरता है।
स्वजन बिछड़जा धन भी लुटजा शौक नैक ना करता है॥
प्राणों पर ही संकट भारी फिर भी मोद में भरता है।
बुद्धि से ले काम सदा वह शत्रु सन्मुख लड़ता है॥

* छन्द नं०–१३३ *

गौ, ब्राह्मण, राजा के ऊपर जो भी हाथ उठाते हैं।
बिना खोट जीवों के ऊपर जो भी शस्त्र चलाते हैं॥
निजी ज्येष्ठ भ्राता से पहले जो भी ब्याह कराते हैं।
ऐसे जन निश्चय ही 'धर्मी' नरक कुण्ड में जाते हैं॥

* छन्द नं०–१३४ *

मद पीकर बकवास करे और चोरी का धन खाता है।
ब्राह्मण की हत्या कर डारे नैक नहीं सकुचाता है॥
अनगिन व्रत करे नित निश दिन कुछ भी नहीं निभाता है।
ऐसा जन 'धर्मी' दुनिया में महा नीच कहलाता है॥

* छन्द नं०–१३५ *

अपने से जो श्रेष्ठ मनुष्य से अपनी राय मिलाता है।
ऐसा जन ही 'धर्मी' जग में उत्तम मनुष्य कहाता है॥
अपनी समझ से जो जन करता मध्यम का पद पाता है।
बिना विचारे जो जन करता नीच कहा वह जाता है॥

* छन्द नं०—१३६ *

औरों का जो धन छीने वह बीज पाप के बोता है।
पर स्त्री, स्त्री सम समझे मानव जीवन खोता है॥
मित्रों पर सन्देह करे वह मूंड पकड़ कर रोता है।
इनको 'धर्मी' जो जन करता नाश शीघ्र ही होता है॥

* छन्द नं०—१३७ *

लज्जा भी मिट जाय वहां से कंगाली जंह आती है।
कार बार सब ठप्प होंय और चिन्ता अधिक सताती है॥
जिसके कारण बुद्धि भी फिर काम नहीं कर पाती है।
'धर्मी' सर्वनाश होता है बुद्धि जब मिट जाती है॥

* छन्द नं०—१३८ *

झूठ बोलने से तो 'धर्मी' चुप रह जाना अच्छा है।
दुष्ट जनों के हलुवा खीर से सूखा खाना अच्छा है॥
भिक्षा वृत्ति के जीवन से प्राण गंवाना अच्छा है।
पर पुरुषों के मिलने से तो रांड कहाना अच्छा है॥

* छन्द नं०—१३९ *

आपत्ति में होत परीक्षा मित्र की मित्रताई की।
निर्धनता में होत परीक्षा अपनी खास लुगाई की॥
दुःख पड़ने पर होत परीक्षा मां के जाये भाई की।
'धर्मी' जन की होत परीक्षा ऋण की करी सहाई की॥

* छन्द नं०—१४० *

प्राणी मात्र की रक्षा करना 'धर्मी' धर्म कहाता है।
सुखी मनुष्य वह कहलाता है रोग निकट ना आता है॥
सज्जन जन वह कहलाता है सबसे प्रेम निभाता है।
हित अनहित का ध्यान करे जो पंडित माना जाता है॥

* छन्द नं०—१४१ *

धन को 'धर्मी' खूब कमाता अच्छा खाता पीता है।
शेष बचे तो दान में देदे घर रीते का रीता है॥
दान करे ना भोग में लावे उसका होय फजीता है।
रात को देवी पुत्तर आकर आन पढ़ावें गीता है॥

* छन्द नं०—१४२ *

जैसे मनुष्य पेट भरता है पशु भी वैसे भरता हैं।
सोता उठता उसी तरह से उसी तरह से डरता है॥
बच्चों को ज्यूं पालन करता पशु भी वैसे करता है।
'धर्मी' धर्म नहीं करता तो भार शीश पै धरता है॥

* छन्द नं०—१४३ *

सौ कामों को तजकर 'धर्मी' प्रथम भोजन पान करो।
सहस्र काम का त्यागन करके पहले नित स्नान करो॥
लाखों कार्य छोड़ के अपने दीनों को कुछ दान करो।
कोटि कार्यों को तज करके याद बैठ भगवान् करो॥

* छन्द नं०—१४४ *

सिंह और बगुला से एकेक मुर्गा से गुण चार लेवो।
कौवा की लो पाँचों बातें कुत्ता की छः धार लेवो ॥
तीन बात लो सीख गधे से जीवन का सुख सार लेवो।
'धर्मी' गुण को धारोगे तो अपना बेड़ा पार लेवो ॥

* छन्द नं०—१४५ *

नीचे ऊपर दृष्टि करके तब आगे चलते ज्ञानी।
कपड़े अन्दर छान लेत हैं जब-जब पीते हैं पानी ॥
सत्य असत्य का निर्णय करलें तब पीछे बोलें वाणी।
सोच विचार आचरण करते 'धर्मी' ना होती हानी ॥

* छन्द नं०—१४६ *

ब्राह्मण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को धारण सूत्र कराता है।
क्षत्रिय, क्षत्रिय और वैश्य को गल में सूत्र पहनाता है ॥
वैश्य, वैश्य को पहना करके तब उसे वेद पढ़ाता है।
'धर्मी' ऐसा लेख पढ़ो तो सुश्रुत ग्रन्थ में आता है ॥

* छन्द नं०—१४७ *

'धर्मी' ऐसा धारण करले किसी से वैर बढ़ावे ना।
सत्य बोल चोरी को तजदे किसी की चीज उठावे ना ॥
ब्रह्मचर्य को धारण करले मन को कहीं डुलावे ना।
सब वस्तु ईश्वर की समझे अपनी कोई बतावे ना ॥

* छन्द नं०–१४८ *

'धर्मी' नित्य पवित्र जल से नियम पूर्वक न्हाया कर।
अपनी वस्तु अपनी समझो मन ना कहीं डुलाया कर॥
कष्ट सहो पर धर्म ना छोड़ो श्रुति पढ़ो पढ़ाया कर।
ईश्वर के गुण गान करो ना गीत और के गाया कर॥

* छन्द नं०–१४९ *

वेद पढ़े ब्रह्मचर्य धारे नित ही अग्निहोत्र करे।
ज्ञान बढ़ावे करे उपासना परम पिता से नित्य डरे॥
महा-यज्ञ पक्षेष्टि करता पत्नी का सब कष्ट हरे।
शिल्प विद्या विज्ञान सीखले तब ब्राह्मण का देह धरे॥

* छन्द नं०–१५० *

वृद्ध जनों की सेवा करता आयु लम्बी पाता है।
सेवा से विद्या मिल जाती जीवन सफल बनाता है॥
सभी जनों में यश फैले और बल पौरुष बढ़ जाता है।
'धर्मवीर' ऐसा जन निश्चय सबके मन को भाता है॥

* छन्द नं०–१५१ *

काल है कैसा, मित्र कौन है जो इसकी पहचान करे।
देश है कैसा, आय है कितनी उतना ही सामान करे॥
मैं हूं कौन, है शक्ति कितनी इसका पूरा ध्यान करे।
इसका ध्यान करे जो 'धर्मी' सुख से वह गुजरान करे॥

* छन्द नं०–१५२ *

निजी पिता का गोत्र जहां हो वहां न ब्याहन जाता है ।
माता की छः पीढ़ी का विस्तार जहां ना पाता है ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का बालक वहां पर ब्याह कराता है ।
ऐसा करने को 'धर्मी' महाराज मनु बतलाता है ॥

* छन्द नं०–१५३ *

ब्राह्मण का सुत आठ वर्ष का पहन जनेऊ न्हाता है ।
ग्यारह वर्ष का क्षत्रिय बालक अपना देह सजाता है ॥
बारह वर्ष का वैश्य का बालक तन की शोभा पाता है ।
दुगने वर्षों के पीछे फिर हर कोई शूद्र कहाता है ॥

* छन्द नं०–१५४ *

धर्म कर्म के करने हारे उच्च वर्ण में जाते हैं ।
अधर्म के जो करें कार्य नीच वर्ण में आते हैं ॥
जैसा जैसा कर्म करें हैं वैसा ही पद पाते हैं ॥
कर्म के द्वारा वर्ण बने हैं ऋषि मुनि फरमाते हैं ॥

* छन्द नं०–१५५ *

गुणी मनुष्य के पास में रहकर गुण-गुण ही कहलाता है ।
दुष्ट मनुष्य के पास जायकर गुण अवगुण बन जाता है ॥
जब तक नीर नदी में रहता मीठा स्वाद कहाता है ।
वो ही जल जलनिधि में जाकर खारी नैक न भाता है ॥

* छन्द नं०—१५६ *

कंगाली न निकट में आती जो जन हित ही दान करे।
मान उसी का होता जग में औरों का जो मान करे॥
मूढ़ मति ना होती उसकी प्राप्त वेद का ज्ञान करे।
'धर्मी' भय नहीं होता उसको ईश्वर का जो ध्यान करे॥

* छन्द नं०—१५७ *

जो जन करता लेन देन वह लक्ष्मी का सुख पाता है।
जो जन करता ईश भजन वह पापों से बच जाता है॥
जो जन रहता मौनी बनकर कलह निकट न आता है।
जो जन रहता गाढ़ नींद में 'धर्मी' भय ना खाता है॥

* छन्द नं०—१५८ *

ब्रह्मचर्य का व्रत जो धारे जीवन का सुख पाता है।
हृष्ट पुष्ट हो करके जग में लक्ष्मी खूब कमाता है॥
भली कमाई के कारण से भलों में मान कराता है।
गृहस्थ धर्म का पालन करके वानप्रस्थ में आता है॥

* छन्द नं०—१५९ *

ब्रह्मचर्य के काल में 'धर्मी' विद्या का अभ्यासी हो।
गृहस्थ धर्म में रहकर के वह हर जन का सुखरासी हो॥
वानप्रस्थ में घर को तजकर बन का ही बनवासी हो।
जिस दिन हो वैराग्य प्राप्त वह उसी दिना संन्यासी हो॥

* छन्द नं०—१६० *

विद्या से जो हीन मनुष्य है करता योगाभ्यास नहीं ।
ऋषि मुनि जो सत्संग करते जाता उनके पास नहीं ।।
वेद शास्त्र में 'धर्मी' अपना रखता है विश्वास नहीं ।
ऐसे मूढ अधर्मी जन को लेना था संन्यास नहीं ।।

* छन्द नं०—१६१ *

विषय के बन्धन से पृथक् हो प्राणी मात्र से प्यार करें ।
नित ही प्राणायाम करें और श्रेष्ठ सभी व्यवहार करें ।।
उत्तम उत्तम कर्म करें और सत्य का नित प्रचार करें ।
परमेश्वर को प्राप्त करें और भव से बेड़ा पार करें ।।

* छन्द नं०—१६२ *

पांचों गुण जिसमें ये होते मान जगत में पाता है ।
विद्या हो और स्वास्थ्य ठीक हो वाणी मधुर सुनाता है ।।
उत्तम तन पर वस्त्र रहें और धन से धनी कहाता है ।
'धर्मी' पूजा जाता है वह चाहे कहीं पर जाता है ।।

* छन्द नं०—१६३ *

'धर्मी' सातों बातें लख कर तब कन्या का व्याह करें ।
कुल और शील स्वभाव देखते धन वाले की चाह करें ।।
रक्षक हो और विद्या पास हो तन को लख वाह वाह करें ।
आयु में ड्योढ़ा दूना हो तब उस वर की चाह करें ।।

* छन्द नं०—१६४ *

धन को दूना करना चाहे धर्म कर्म में लाया कर।
अपना मान बढ़ाना चाहे सबको शीश झुकाया कर॥
अपना ज्ञान बढ़ाना चाहे गुणी की सेवा ठाया कर।
'धर्मी' निर्भय होना चाहे ईश्वर के गुण गाया कर॥

* छन्द नं०—१६५ *

लोक में सारे जन जाने हैं चन्दन शीतल होता है।
चंदा और भी शीतल होता और की गर्मी खोता है॥
साधु की संगति में जो जन नित्य लगावे गोता है।
'धर्मी' इतना शीतल होजा बीज बुरा ना बोता है॥

* छन्द नं०—१६६ *

दुष्ट मनुष्य सुन सज्जन वाणी सबमें हंसी उड़ाता है।
कौवा कोयल के संग बोले फूला नहीं समाता है॥
दादुर पीपी टेर सुने तब अपनी टेर लगाता है।
बगुला हंसी हंस की करता जब वह शब्द सुनाता है॥

* छन्द नं०—१६७ *

अर्थ हेत अर्थार्थी निशदिन भजन ईश का करता है।
आर्त मनुष्य जब जाप करत है श्वास कष्ट का भरता है॥
जिज्ञासु जब खोज करत है सोच-सोच पग धरता है।
ज्ञानी ज्ञान के द्वारा जाने पाप कर्म से डरता है॥

* छन्द नं०—१६८ *

बिना बुलाये धर्मवीर इन चार घरों पर जाता है।
दुख में सुख में साथ रहे जो सच्चा मित्र कहाता है॥
पालन पोषण करे जो स्वामी जन्म जहां पर पाता है।
अंधकार को मिटा गुरु जो सच्चा मार्ग बताता है॥

* छन्द नं०—१६९ *

जो जन रणभूमि में जाकर पीठ नहीं दिखलाते हैं।
पर पुरुषों की नार नहीं जो खोटी नजर लखाते हैं॥
जिसके द्वार से भिक्षुक खाली लौट कभी ना जाते हैं।
'धर्मी' ऐसे महापुरुष तो कहीं-कहीं पर पाते हैं॥

* छन्द नं०—१७० *

कौन भला वस्तु ऐसी जो आग जला ना पाती है।
कौन भला वस्तु ऐसी जो सेतु समा ना जाती है॥
कौन भला देहधारी ऐसा मौत जिसे ना खाती है।
कौन भला त्रिया ऐसी जो कभी न जाल रचाती है॥

* छन्द नं०—१७१ *

व्यभिचारी की संगत पाकर संन्यासी मिट जाता है।
मूर्ख मंत्री रखकर राजा अपना नाश कराता है॥
अहंकार के करने वाला ना कोई गुणी कहाता है।
मद्य मांस का सेवन हारा मान कहीं ना पाता है॥

* छन्द नं०—१७२ *

दुष्ट मनुष्य विद्या को पाकर सब में उधम मचाता है।
दुष्ट मनुष्य धन दौलत पाकर फूला नहीं समाता है॥
दुष्ट मनुष्य बल पौरुष पाकर निर्बल नित्य सताता है।
'धर्मी' जन इन सबको पाकर सबकी सेवा ठाता है॥

* छन्द नं०—१७३ *

सचिव यदि जनता से डरता राज नष्ट हो जाता है।
वैद्य यदि रोगी से डरता रोगी मृत्यु पाता है॥
गुरु यदि चेले से डरता शिष्य न वेद सुनाता है।
'धर्मी' दान नहीं देता तब भूखा पाप कमाता है॥

* छन्द नं०—१७४ *

तीन भांति के जन जग में सब जगह पै पाये जाते हैं।
करना धरना कुछ नहीं पर बढ़बढ़ बात बनाते हैं॥
कुछ जन जैसा कहते हैं वे वैसा कर दिखलाते हैं।
कुछ जन 'धर्मी' कर देते पर अपना गुण ना गाते हैं॥

* छंद नं०—१७५ *

नभ मण्डल में चमक दमक मिल तारे बेशुम्मार करें।
पूर्णमासी सी उजियारी चंदा चाहे हजार करें॥
सब पर्वत सब दिशा में अपना अग्नि रूप अपार करें।
किन्तु सूरज की भांति से दूर नहीं अंधकार करें॥

* छंद नं०—१७६ *

नित्य भलाई करता है जो विपदा नहीं सताती है।
जिसके कर पारस पथरी हो कंगाली ना आती है॥
दुष्ट जनों के संग रहने से गौरवता घट जाती है।
ईश भजन बिन किसी मनुष्य को परम गति ना पाती है॥

* छंद नं०—१७७ *

पर निंदा सम और दूसरा जग में कोई पाप नहीं।
ओ३म् नाम से बढ़कर जग में दूजा कोई जाप नहीं॥
घोर अविद्या से बढ़ करके जीवन में कोई ताप नहीं।
सुख की सामग्री जो देता उससे बढ़ कोई बाप नहीं॥

* छंद नं०—१७८ *

'धर्मी' सुन्दर देश धन्य वह गंगा जी जहां बहती है।
पत्नी धन्य समझियो उसको सेवा में जो रहती है॥
भूप धन्य वह होता जनता कष्ट नहीं कुछ सहती है।
ब्राह्मण धन्य जो वेद सुनावे नीति ऐसे कहती है॥

* छंद नं०—१७९ *

जिसके पग न फटी बिवाई पीर पराई जाने क्या।
बच्चा होने के दुख का कोई बांझ लुगाई जाने क्या॥
कवियों के जो साथ रहा ना वह कविताई जाने क्या।
निर्दयी जन कोई दीन दुखी की करूं सहाई जाने क्या॥

*** छन्द नं०—१८० ***

निष्कलंक जो जीवन करले उस जैसी चतुराई ना ।
भाई के संग वैर करे ना उस जैसा कोई भाई ना ॥
आपत्ति में करे सहाई उससा कोई सहाई ना ।
जिसको 'धर्मी' सब जन गावें उस जैसी कविताई ना ॥

*** छन्द नं०—१८१ ***

ईश्वर के हैं जाप अनेकों ओ३म् से बढ़कर जाप नहीं ।
सभी जनों की हानि जिससे झूठ से बढ़कर पाप नहीं ॥
मूर्ख सुत विधवा हो कन्या उससे बढ़कर ताप नहीं ।
प्राणिमात्र की रक्षा करता उससे बढ़कर बाप नहीं ॥

*** छन्द नं०—१८२ ***

नहीं नदी से पार उतारे फेर बताओ नैया क्या ।
आपत्ति में हंसी उड़ावे फेर बताओ भैया क्या ॥
खाय बिनौले दूध न देवें फेर बताओ गैया क्या ।
रात बीत जा नींद न आवे फेर बताओ शैया क्या ॥

*** छन्द नं०—१८३ ***

सबको सद्उपदेश करें थे वें सतभाषी कहां गये ।
सुवर्ण का शुभ दान करें थे वे सुखरासी कहां गये ॥
पुर को पूरा स्वर्ग बनाते वे संन्यासी कहां गये ।
ब्रज में बन्सी बजाते वाले वे ब्रजवासी कहां गये ॥

* छन्द नं०—१८४ *

बिना भूख के किसी समय भी भोजन खाना ना चाहिए ।
बिना मान के किसी मित्र के घर पर जाना ना चाहिए ॥
बिना थायके जल के अन्दर बड़कर न्हाना ना चाहिए ।
बिना समझ के मिलें श्रोता 'धर्मी' गाना ना चाहिए ॥

* छन्द नं०—१८५ *

युवा अवस्था होय नार की बापू के घर करना ना ।
नीच मनुष्य की करके नौकरी जीवन भर दुख भरना ना ॥
दूर देश में 'धर्मी' पैसे और के ढिंग में धरना ना ।
युद्ध क्षेत्र में शत्रु सन्मुख पीठ दिखाकर मरना ना ॥

* छन्द नं०—१८६ *

जो जन फंसा अविद्या अन्दर उसकी होती ख्वारी है ।
होय स्मिता 'धर्मी' जिसमें जीवन रहे दुखारी है ॥
राग द्वेष जिन जन में व्यापे विपता भरता भारी है ।
अभिनिवेश के डर से व्याकुल देखी दुनिया सारी है ॥

* छन्द नं०—१८७ *

तन हो सुन्दर वस्त्र स्वच्छ हों ऐसा जन प्रचारी हो ।
वाणी में रस ऐसा होवे सुनें मगन नर नारी हो ॥
विद्या हो और धन हो इतना जीवन सदा सुखारी हो ।
'धर्मी' पांचों बातें हों तब जगत पीछे सारी हो ॥

* छन्द नं०—१८८ *

अब तक ऋषि हुए बहुतेरे दयानन्द का सा सानी ना।
सब कुछ दान किया कितनों ने कर्ण सरीसा दानी ना ॥
निर्मल नीर बंहे नदियों में गंगा जैसा पानी ना।
रानी हुई बहुत सी अब तक सीता जैसी रानी ना ॥

* छन्द नं०—१८९ *

शाम सवेरे बैठ नदी पर नाम ओ३म् का लीये जा।
आय का अपनी शतम् भाग नित दीन दुखी को दीये जा ॥
वैर भाव का त्यागन करदे जब तक जग में जीये जा।
फल की आशा तजकर 'धर्मी' काम रात दिन कीये जा ॥

* छन्द नं०—१९० *

प्रथम पति नार का होता सोम वही कहलाता है।
दूजा है गन्धर्व पति जो उसके मन को भाता है ॥
तीजा अग्नि पतिदेव है तीजी बार सुहाता है।
चौथे से फिर आगे सबका नाम मनुष्य ही आता है ॥

* छन्द नं०—१९१ *

कन्या होय सुशीला ऐसी कुल की कान निभावे जो।
मात पिता के घर जब तक हो ना शृंगार बनावे जो ॥
सास ससुर को तीर्थ समझे उनकी सेवा ठावे जो।
'धर्मवीर' को तजकर ना कभी और की ओर लखावे जो ॥

* छन्द नं०—१६२ *

भूख से भोजन अधिक करे जो रोग रहित नहीं रहता है।
जो जन सुने वही जन उसको उलटी सीधी कहता है ॥
मित्र और परिवार जनों के कटु वचन भी सहता है।
समय से प्रहले धर्मवीर मजधार धार में बहता है ॥

* छन्द नं०—१६३ *

तीन भांति के ब्रह्मसूत्र तू 'धर्मी' सदा बनाया कर।
सूत सनी और ऊन का किसको सबको भेद बताया कर ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण को धारण सदा कराया कर।
कौ है ब्राह्मण क्षत्रिय कौ है सबका भ्रम मिटाया कर ॥

* छन्द नं०—१६४ *

'धर्मी' शिष्य कुशिष्य मिले तो उसे सिखाना ना चाहिए।
आंख फेरकर बात करे जो मित्र बनाना ना चाहिए ॥
जिस जन को तुम नहीं जानते उसका खाना ना चाहिए।
रांड नार के कभी अकेला घर पर जाना ना चाहिए ॥

* छन्द नं०—१६५ *

अच्छा शिष्य वही होता जो गुरु की सेवा ठाता है।
जैसा जो कुछ कहें गुरु जी उनका कहन बजाता है ॥
पीछे सोवे सेवा करके पहले उन्हें सुलाता है।
प्रातःकाल जब उठें गुरु जी, पहले बैठा पाता है ॥

*** छन्द नं०—१९६ ***

जीव आत्मा इतना सूक्ष्म नहीं नजर में आता है।
तेगा चाहे तेज धार हो काट उसे ना पाता है॥
अग्नि नहीं जलाती उसको पानी नहीं गलाता है।
हवा सुखा ना पाती है न्यूं 'धर्मी' सत्य बताता है॥

*** छन्द नं०—१९७ ***

आज सभी मर जायेंगे ये ऐसी भूल करे मत ना।
युद्ध क्षेत्र में आकर 'धर्मी' पीछे पैर धरे मत ना॥
भीरू की भांति से रण में शत्रु साथ लड़े मत ना।
भारी पाप लगेगा मुझको ऐसा सोच डरे मत ना॥

*** छन्द नं०—१९८ ***

जीव आत्मा बना बनाया नहीं कभी भी मरता है।
किये कर्म का फल भोगन को देह अनेकों धरता है॥
जैसा करे कर्म फल पावे ना टारे से टरता है।
धर्मवीर जो परम पिता है न्याय ठीक ही करता है॥

*** छन्द नं०—१९९ ***

छोड़ पुराने नये वस्त्र की जैसे खुशी मनाता है।
जीव आत्मा उसी भांति से देह दूसरी पाता है॥
योगी जन तज करके उसको खुशी खुशी से जाता है॥
मूढ मनुज मरने से पहले भारी रुदन मचाता है।

* छन्द नं०–२००

एक दिना जब मरना है तो मरने से क्यों डरता है।
किये कर्म का फल मिलता है पाप कर्म क्यों करता है॥
ना कुछ लाया ना ले जागा जोड़-जोड़ क्यों मरता है।
मृत्यु आवे तब ही मरना पहले से क्यों मरता है॥

* छन्द नं०–२०१ *

ऋषि मुनि गये हार पार ना ईश्वर का कुछ पाया है।
बैठ समाधि सिद्ध जनों ने काफी पता लगाया है॥
नहीं कहीं पर सीमा उसकी ऐसा वचन सुनाया है।
'धर्मी' देख चकित रहता है ऐसी अद्‌भुत माया है॥

* छन्द नं०–२०२ *

नित्य नियम से वेद पढ़ो जो परम पिता की वाणी है।
जीवन का कल्याण होय ना होय कदापि हानी है॥
ऋषि मुनि साधु सन्तों ने ऐसे नित्य बखानी है।
उन्होंने ऐसा किया जिन्होंने निश्चय ऐसे जानी है॥

* छन्द नं०–२०३ *

साधन रहित मनुष्य की बुद्धि काम नहीं कर पाती है।
काम न पूरा होने पर फिर चिन्ता अधिक सताती है॥
जिसके चित में चिन्ता व्यापी नींद कहां फिर आती है।
धर्मवीर दुःख में ही आयु बीत सभी न्यूं जाती है॥

* छन्द नं०—२०४ *

धर्म कर्म का त्यागन कर जो धन को नित्य कमाते हैं।
पाप कमाई को फिर भी वे बैठ अकेले खाते हैं॥
दुष्कर्मों को करके पापी फूले नहीं समाते हैं।
धर्मवीर ऐसे जन निश्चय घोर नरक में जाते हैं॥

* छन्द नं०—२०५ *

गुरुदेव को घोड़ा दे और धारण क्षत्र कराता है।
जूता दे और आसन दे अरु अन्न शाक पहुँचाता है॥
भूमि दे और सोना दे अरु गौ का दूध पिलाता है।
इतनी सेवा करे शिष्य जो अपना धर्म निभाता है॥

* छन्द नं०—२०६ *

'धर्मी' ऐसा जन जग में जीवन के सुख को पावे ना।
इष्ट मित्र परिवार जनों की निन्दा कर सकुचावे ना॥
सदा गुणी में अवगुण देखे, गीत गुणी के गावे ना।
गुरुपत्नी से प्यार करे और सभा बीच शरमावे ना॥

* छन्द नं०—२०७ *

'धर्मी' रोग निकट नहीं आवे भूख राख जो खाओगे।
भोजन करके मूत्र त्याग दे फेर टहलने जाओगे॥
दिन में पानी दूना पीओ नित्य नियम से न्हाओगे।
मित्रों में कहीं बैठ हंसो औरों को खूब हंसाओगे॥

* छन्द नं०–२०८ *

प्रेम, सुक्ख, सन्तोष, क्षमा सब सत्वगुणी में पाते हैं।
रजोगुणी पै द्वेष, ईर्ष्या, दुःख, शोक भी आते हैं।।
तमोगुणी को मोह कुटिलता अवगुण आन सताते हैं।
ईश शरण में जाकर 'धर्मी' तीनों से तर जाते हैं।।

* छन्द नं०–२०९ *

लक्खी और करोड़ी भूखे बिन पैसे के रहते हैं।
आनन्दी, सुखदेव रात दिन कष्ट अनेकों सहते हैं।।
हुकमा और बचनसिंह दोनों नहीं किसी से कहते हैं।
धर्मवीर और सत्यवीर भी बाट पाप की गहते हैं।।

* छन्द नं०–२१० *

अहंकार मन चित्त अरु बुद्धि अन्तःकरण कहाता है।
बुद्धि निश्चय करती है संकल्प जो मन को भाता है।।
चित्त ही चिन्तन करता है जो भाव चित्त में आता है।
अहं भाव जब आवे 'धर्मी' अहंकार कहलाता है।।

* छन्द नं०–२११ *

'धर्मी' भूप श्रेष्ठ वही होता मान प्रजा में पाता है।
लिये हुए कर को कर दूना प्रजा हेत लगाता है।।
सदा सत्य का पालन करता झूठ न नैक सुहाता है।
राज काज को ठीक चलावे ऐसा पुत्र बनाता है।।

※ छन्द नं०—२१२ ※

'धर्मी' राष्ट्र सुखी नहीं होता वैद्यों की लंगार जहाँ।
'धर्मी' राष्ट्र सुखी नहीं होता वेश्या बेशुम्मार जहाँ ॥
'धर्मी' राष्ट्र सुखी नहीं होता बसते चोर अरु जार जहाँ।
'धर्मी' राष्ट्र सुखी नहीं होता बैरिस्टर नर नार जहाँ ॥

※ छन्द नं०—२१३ ※

'धर्मी' दृष्टि नहीं डालता नारी भोजन खाती हो।
'धर्मी' दृष्टि नहीं डालता जो त्रिया कहीं न्हाती हो ॥
'धर्मी' दृष्टि नहीं डालता नारी गाना गाती हो।
'धर्मी' दृष्टि नहीं डालता नारी निद्रा पाती हो ॥

※ छन्द नं०—२१४ ※

जिस सरिता की थाह नहीं उस नदी में बड़ना ना चाहिये।
त्रिया का विश्वास कभी भी किसी को करना ना चाहिये ॥
सींग नुकीले नाखुन पैने उन से लड़ना ना चाहिये।
बिना बात तेगा धारी से भिड़कर मरना ना चाहियें ॥

※ छन्द नं०—२१५ ※

यौवन पाय स्वाभाविक त्रिया मन्द-मन्द मुस्काती है।
लज्जित हो मुख फेर-फेर कर मीठे वचन सुनाती है ॥
भिन्न-भिन्न प्रकार अदा से अपना चिह्न दिखाती है।
तिरछी दृष्टि मन्द चाल से नर को दास बनाती है ॥

* छन्द नं०—२१६ *

चार भांति की वस्तु मिलकर सामग्री कहलाती है ।
पड़े सुगन्धित कस्तूरी जो बदबू दूर भगाती है ।।
किशमिश गोला और छुआरे, जिनको दुनिया खाती है ।
रोग नाशनी पड़े औषधी सब के मन को भाती है ।।

* (४—ऋषि ४—वेद) छन्द नं०—२१७ *

अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा चार ऋषि कहलाते हैं ।
जिनके द्वारा वेद प्रकट भये गुणी गवैये गाते हैं ।।
ऋक्, यजुः, साम, अथर्व वेद ये नाम वेद के पाते हैं ।
जिनको 'धर्मी' पढ़ कर मानव भवसागर तर जाते हैं ।।

* (४ उपवेद) छन्द नं०—२१८ *

आयुः धनुः गन्धर्व, अर्थ उपवेद चार ही होते हैं ।
जिनको न पढ़ने से मानव जन्म व्यर्थ ही खोते हैं ।।
'धर्मी' अब कोई यतन बताओ मूंड पकड़ कर रोते हैं ।
दुःखों के गड्ढे में गिर कर खांय रात दिन गोते हैं ।।

* छन्द नं०—२१९ *

वेदों के छः अंग सुनो हम उनके नाम सुनाते हैं ।
शिक्षा, कल्प, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष पाते हैं ।।
जिनको ठीक-ठीक पढ़ने से वेद समझ में आते हैं ।
ऋषि, मुनि अरु साधु संत सब ऐसी बात बताते हैं ।।

* (१० उपनिषद) छन्द नं०–२२० *

दस उपनिषद् माने जाते उनके नाम सुनाते हैं।
ईश, केन, कठ, मुण्डक चौथा पञ्चम प्रश्न बताते हैं॥
ऐतरेय, मांडूक्य, आठवाँ तैत्तिरीय बतलाते हैं।
छान्दोग्य है नौवां, दसवां, वृहदारण्यक पाते हैं॥

* छन्द नं०–२२१ *

जन्म से लेकर मरने तक जो एक ही जैसे रहते हैं।
दुनिया वाले सारे उनको जाति नाम से कहते हैं॥
जीवन काल का नाम है, आयु भोग में दुःख सुख सहते हैं।
कर्म विपाक नाम तीनों का सब ही इसमें बहते हैं॥

* छन्द नं०–२२२ *

ब्रह्मचर्य से योगी जन सब महाबली कहलाते हैं।
ब्रह्मचर्य से देश की रक्षा सब राजा कर पाते हैं॥
ब्रह्मचर्य से सभी विप्र सब वेद ठीक पढ़ जाते हैं।
ब्रह्मचर्य से मृत्यु जीतें गीत ईश के गाते हैं॥

* (८ सिद्ध) छन्द नं०–२२३ *

अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा सिद्धि नाम सुनाते हैं।
पञ्चम प्राप्ति प्राकाम्य पट्, वशित्व सप्तम पाते हैं॥
अष्टम है ईशित्व नाम की जिस से मौज उड़ाते हैं।
मुक्ति से तो दूर रहें पर जग में नाम कमाते हैं॥

* छन्द नं०–२२४ *

बात करे तब हंसता ना है चलते में कुछ खाता ना ।
किये हुए का गान न करता, बीते को पछताता ना ॥
दो जन जहां पर बात करें हैं बिना बुलाये जाता ना ।
'धर्मी' ऐसा जन जग में कोई मूढ मनुष्य कहलाता ना ॥

* छन्द नं०–२२५ *

कौन भला ऐसा जग में जो भाव राष्ट्र के जानता है ।
कौन भला कृपण जन को निज श्रद्धा पात्र मानता है ॥
कौन पुरुष के भाग को जाने, कौन दुष्ट पहचानता है ।
कौन नार के भाव को जाने, 'धर्मी' सत्य बखानता है ॥

* छन्द नं०–२२६ *

जन्म से सिद्धि उसको होती पूर्व जन्म संस्कारी हैं ।
बलवर्धक औषध सेवन से बने वीर बलधारी है ॥
वेदों का अध्ययन करे जो बनता पण्डित भारी है ।
'धर्मी' मन को वश में करले बनता वह ब्रह्मचारी है ॥

* छन्द नं०–२२७ *

योद्धा भी क्या योद्धा है वो जिस पै तेगा ढाल नहीं ।
गाना भी क्या गाना है वो जिसमें स्वर अरु ताल नहीं ॥
चरखा भी क्या चरखा है वो जिसके ऊपर माल नहीं ।
'धर्मी' भी क्या धर्मी है वो दीन दुखी का ख्याल नहीं ॥

* छन्द नं०—२२८ *

बिना कण्ठ के रागी कोई ऊंचे स्वर से गावे क्या।
तन पै जिसके एक लंगोटी सब के सन्मुख नहावे क्या॥
दिक् का रोगी खीर का भोजन कोई चाव से खावे क्या।
जहां अधर्मी सभा लगावें, 'धर्मी' उसमें गावे क्या॥

* छन्द नं०—२२९ *

प्रथम पग बाँये को धोवे जो क्षत्रिय कहलाता है।
दोनों पग धो करके बैठे जब जब भोजन खाता है॥
सबसे पहले सर को धोवे जब कोई भी न्हाता है।
'धर्मी' ऐसा जो करता है रोग निकट नहीं आता है॥

* छन्द नं०—२३० *

जैसा कर्म करे कोई जग में वैसा ही पद पाता है।
जो जन पढ़े वेद की विद्या ब्राह्मण वही कहाता है॥
सेवा से निर्वाह करे जो नीच वर्ण में आता है।
कर्म की महिमा न्यारी जग में 'धर्मी' सत्य बताता है॥

* छन्द नं०—२३१ *

किये हुए का फल टारे से कभी किसी का टरता ना।
यत्न करो फिर भोग किसी का किसी भांति भी हरता ना॥
बुरा करे ना कभी किसी का भार शीश पै धरता ना।
'धर्मी' ना कभी धर्मी होता काम धर्म के करता ना॥

* छन्द नं०—२३२ *

जो जन करे तक्र का सेवन रोग निकट ना आता है ।
पहले बसे रोग को तन से क्षण में दूर भगाता है ।।
ऐसा उसको नष्ट करे ना फेर पनपने पाता है ।
इस कारण से 'धर्मी' उसको अमृत सम बतलाता है ।।

* छन्द नं०—२३३ *

ओ३म् नाम की जगह कहीं पर राम नाम नहीं आया है ।
यास्क मुनि ने राम नाम का काला अर्थ बताया है ।।
कृष्ण नाम भी किसी वेद में नहीं ओ३म् का पाया है ।
'धर्मवीर' फिर किस कारण से तूने ओ३म् भुलाया है ।।

* छन्द नं०—२३४ *

'धर्मी' कृषक, कृषक ना वह जिसके सब दिन काम नहीं ।
'धर्मी' वह जन जन भी ना है जिसको कुछ आराम नहीं ।।
'धर्मी' भक्त, भक्त ना होता भजन सुबह और शाम नहीं ।
'धर्मी' नारद, नारद ना वह फिरे जो सारे धाम नहीं ।।

* छन्द नं०—२३५ *

'धर्मी' क्षत्रिय, क्षत्रिय ना वह जिसके कर में तीर नहीं ।
'धर्मी' सेना, सेना ना वह जिसमें होते वीर नहीं ।।
'धर्मी' सरिता, सरिता ना वह जिसमें बहता नीर नहीं ।
'धर्मी' भोजन, भोजन ना वह जिसमें होती खीर नहीं ।।

* कवित्त नं०–१ *

श्रावण में साग और तक्र भादों मास माहीं,
क्वार मास करेला को, जो भी जन बचावेगा।
कार्तिक में दही और जीरे को अगहन मास,
धनिये को काम में जो, पूस में न लावेगा॥
मिश्री माघ, चना फाल्गुन, चैत मास कच्चा मीठा,
तेल को बैसाख, ज्येष्ठ पेठा जो न खावेगा।
बेल का आसाढ़ मास, जो भी जन त्यागन करे,
'धर्मवीर' फेर रोग, पास में न आवेगा॥

* कवित्त नं०–२ *

दरिद्रता ना खोजने पर, कोई जन पावे वहां,
'धर्मवीर' होता जहां, दानियों का देश है।
दुर्गति अपमान उसके, पास में ना वास करे,
जिसने तन पै धार लिया, नम्रता का वेश है॥
सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी के जो भक्त होते,
उनके हृदय भय का अंकुर होता नहीं लेश है।
मोक्ष का महान् सुख, ज्ञान द्वारा पाया जिन,
और सुख पाना उसे, रहता नहीं शेष है॥

* कवित्त नं०–३ *

'धर्मवीर' जन्म जन, जिस जन से पावे कोई,
जग बीच नाता उसका, पिता का कहाता है।

विद्या के पढ़ाने वाला, पिता के समान होता,
पिता ही कहाता जो जन जनेऊ पहनाता है ॥
दीन और दुखियाओं का अन्न से जो पालन करे,
उनके लिये पिता वो ही अन्न का जो दाता है।
पिता का जो नाता जग में पांच जन के साथ होता,
पांचवां पिता वह होता भय से जो बचाता है ॥

* कवित्त नं०—४ *

'धर्मवीर' अपने महीपति की जो पत्नी होती,
उससे अपना होता सबका माता ही का नाता है।
पूज्य गुरदेव जो कि जीवन का कल्याण करे,
उनकी धर्मपत्नी होती, अपनी पूज्य माता है ॥
अपनी धर्मपत्नी की जो, माता है वह माता होती,
माता ही है माता उसकी मित्र जो कहाता है।
इसी तरह पांच माता, होती हैं जगत् बीच,
पांचवीं वह माता होती, जन्म की जो दाता है ॥

* कवित्त नं०—५ *

धातुओं में उत्तम सोना, गन्ध बिना किया उसे,
गन्ने ऊपर कहीं देखो, फल न लगाया है।
वृक्षों में श्रेष्ठ चन्दन, सभी जन जानते हैं,
ऐसे उत्तम वृक्ष के ना, फूल तक बनाया है ॥
विद्वानों को निर्धन किया, राजाओं की अल्प आयु,

ऐसा उल्टा करने में क्या ईश के समाया है।
'धर्मवीर' कार्य जो, सारा ही यह ठीक होता,
बनाने के समय उसने, मुझे ना बुलाया है।

* कवित्त नं०–६ *

सेवक और राहगीर, भूखा यदि सोता पावे,
उनका हित यही उन्हें सोते से जगाइये।
बटु और डरा हुआ, भण्डारी और द्वारपाल,
यदि तुझे सोते मिलें, उसी क्षण उठाइये ॥
भेड़िया और सांप, शेर, राजा, बालक, कुत्ता, मूर्ख,
इन सातों के भूल से ना, हाथ भी लगाइये।
'धर्मवीर' सात छोड़, सातों को जगाता रहे,
देश क्या परदेश में तू, चाहे कहीं जाइये ॥

* कवित्त नं०–७ *

रहने के मकान मैले, खान पान वस्त्र मैले,
ऐसा जन जीवन में, झगड़े नित झोता है।
अनेकों शरीर बीच व्याधि उसके व्यापक रहे,
सूर्य के उदय अस्त, समय भी जो सोता है ॥
दांतों में हो मैल जिनके, भोजन कई बार करें,
ऐसों के ही दन्त पीड़ा, पेट दर्द होता है।
'धर्मवीर' प्रति जन से कड़वा जो बखान करें,
ऐसा जन अपने हांथों लक्ष्मी को खोता है ॥

* कवित्त नं०–८ *

'धर्मवीर' छः जनों का, सदा ही सब त्याग करो,
अध्याणक का त्याग करो, करे ना पढ़ाई जो।
यज्ञ के कराने वाले, तजो मूर्ख पुरोहित को,
तजो ऐसे महिपत को, करे न्रों सहाई जो॥
ग्राम अन्दर रहने वाले, ग्वालिये का त्याग करो,
त्याग करो बोले बोल, कड़वे नित लुगाई जो।
ग्राम अन्दर खोजने पर, कभी कभी पावे कहीं,
तजो उसे सभी जन, वन का प्रेमी नाई जो॥

* कवित्त नं०–९ *

चोरों का निर्वाह होता, आलसी बसत जहां,
वैद्य का भण्डार भरे, जहां पर बीमार हैं।
याचक भी आनन्द करें यजमानों के द्वार सदा,
जारनी किलोल करें, जहां पुरुष जार हैं॥
होते हैं धनवान् न्यायधीश भी वहां के सभी,
जहां बिना बात करें, नगरी में तकरार हैं।
'धर्मवीर' पण्डितों की चले पण्डिताई वहां,
जहां पर बसत मूढ, पुरुष और नार हैं॥

* कवित्त नं०–१० *

'धर्मवीर' धर्मी जन यतन चाहे लाख करो,
किन्तु इन दसों को नहीं होता धर्म ज्ञान है।

आलसी और थका हुआ, तीजा जो उन्मत्त रहे,
चौथा जन रहता जो, नशे में गलतान है ।।
क्रोधी और भूखा रहै, सातवां जो शीघ्रकारी,
आठवां वह लोभी, करे लोभ जो महान् है ।
रात दिन डर के मारे, रहता जो कम्पायमान,
दसवां कामी जन जिसे, हित का नहीं ध्यान है ।।

* कवित्त नं०—११ *

दूसरों का घर फूंके, विष द्वारा मारे कोई,
कोई दुराचार की कमाई नित खात है ।
मद्य-पान करने वाला, बैन तीक्ष्ण बोले नित,
मित्र और गुरुपत्नी खोटी जो लखात है ।।
वेदों की जो निन्दा करे, गर्भपात करे कोई,
भलों में लगाकर दोष, बातें जो मिलात हैं ।
'धर्मवीर' शरणागत के, साथ में जो घात करे,
नर्क के ये गामी सारे, झूठी नहीं बात है ।।

* कवित्त नं०—१२ *

धूर्तों को शिक्षा देता, कृपण से जो मांगे दान,
स्वार्थ के हेत बने, शत्रु का जो दास है ।
हो कर के कुलीन सदा, नीचता के काम करे,
निज पुत्रवधु से जो, करता उपहास है ।।
बलहीन हो करके जो, बलवानों से वैर करे,

चुगली, जारी करके, करे मान की जो आस है।
कर्ज लेकर धनी से, जो कहे मेरे याद नहीं,
ऐसे जन का नर्क बीच होता 'धर्मी' वास है॥

* कवित्त नं०—१३ *

मांग मत धन उससे, करे जो कंजूसी नर,
मांग मत उससे, बोले कड़वे नित बैन जो।
मांग मत धूर्त और मूर्खों से भूल कर के,
मांग मत उससे, काटे जंगल ही में रैन जो॥
मांग मत उससे जिसका कोई भी ना मान करे,
मांग मत उससे, नहीं पाता सुख चैन जो।
मांग मत हिंसक; बैरी, चोर जार ज्वारी नर से,
मांग मत 'धर्मी' उससे, करे लैन दैन जो॥

* कवित्त नं०—१४ *

जनेऊ को धारण करे, वस्त्र सदा स्वच्छ पहने,
जल राखे पास निज, करे नित स्नान जो।
वेदों का स्वाध्याय करे, सदा सत्य बोले बोल,
कभी नीच मनुष्यों का, करे न जलपान जो॥
दोनों समय यज्ञ करे, दीनों की सहाय करे,
नित्य प्रति प्रातः शाम, करे ईश ध्यान जो।
ऐसे जन जन्म भर ही, मुक्ति का आनन्द करें,
'धर्मवीर' गुरु जन का करता है गुण गान जो॥

* कवित्त नं०—१५ *

उस राजा का नाश होता, मन्त्री मूढ़ होता जिसका,
संन्यासी का नाश संग से, सुत का पितु प्यार से।
विद्याहीन विप्र का हो, मित्र का हो प्रेम बिना,
सज्जन के स्वभाव का हो, सदा दुराचार से॥
मदिरा का जो सेवन करे, लज्जा पास रहती नहीं,
कुल का होगा सर्वनाश, खोटे परिवार से।
खेती का हो नाश यदि, देखा भाली करे नहीं,
'धर्मी' धन का नाश होता, खोटे व्यवहार से॥

* कवित्त नं०—१६ *

जो भी जन लज्जा करे, उसे महा मूढ़ कहें,
पाखण्डी बताते फिरें सच्चे व्रतधारी को।
जो भी जन मौनी बने, उसे बुद्धिहीन कहें,
कपटी कहें उसे, माता कहे पर नारी को॥
दीन उसे कहें जो कि नम्रता से बात करें,
दयाहीन कहते फिरें, वीर बलकारी को।
कौन सा वह गुणी जिसे दुर्जन ने ठुकराया नहीं,
बड़ा ही बतावें बक्की 'धर्मी' से प्रचारी को॥

* कवित्त नं०—१७ *

सज्जन यदि घर पर आवे, उसका आदर मान करे,
दे करके बतावे नहीं, वो ही सच्चा दान है।

किसी की भलाई करके, किसी से भी कहे नहीं,
दीनों की जो रक्षा करे, वो ही बलवान् है ।।
पाय करके सम्पत्ति को, गर्व कभी करे नहीं,
देश धर्म हित दे दें, पाता वो ही मान है ।
बैठ करके सभा बीच, औरों का गुणगान करे,
'धर्मवीर' वो ही होता, सज्जन महान् है ।।

* कवित्त नं०–१८ *

भोग में भय रोग का हो, सुन्दरता में बुढ़ापे का,
चोर का डर रहता सदा, रत्नों की खान में ।
अच्छे कुल में पतन का भय, मौन में हो दीनता का,
वाद और विवाद का भय, शास्त्रों के ज्ञान में ।।
बली को हो शत्रु का भय, गुणी जन को दुष्ट जन का,
देह में है मृत्यु का भय, आजा किस आन में ।
'धर्मवीर' सारे ही पदार्थ दीखें भय से युक्त,
किन्तु कभी होता नहीं भय भगवत के ध्यान में ।।

* कवित्त नं०–१९ *

कहीं पर है हाय हाय रोना दिन रात का है,
कहीं पर है नाच रंग, वीणा की झंकार है ।
कहीं पर है विद्वानों का, शास्त्रों का शास्त्रार्थ,
कहीं पर मचाया मद्य वालों ने तकरार है ।।
कहीं सुन्दर नारियों के साथ में किलोल करें,

कहीं कोढ़ वालों के तन बहे रक्त धार हैं।
'धर्मवीर' आज तक भी समझ में कुछ आया नहीं,
सुख से है या दुख से भरा, कैसा यह संसार है ॥

*** कवित्त नं०—२० ***

मन में यदि क्षमा भाव, कवच और धारे क्या वह,
क्रोध है अपार जिसे, शत्रु वह बनावे क्या।
जाति के हैं लोग साथी, अग्नि की क्या बाट देखे,
मित्र हैं अपार जिसके, सुख की औषध खावे क्या ॥
दुर्जन जिनके साथ में हैं, सर्प से भय खाय कैसे,
विद्या का है कोष जिस पै, और धन कमावे क्या।
नेत्रों में लज्जा जिसके, और भूषण धारे क्या वह,
कविता अच्छी जिसकी 'धर्मी' राज उसे भावे क्या ॥

*** कवित्त नं०—२१ ***

अरे चित्त व्यर्थ ही में, इधर उधर घूमता क्यों,
घूमना दे छोड़ अब तो, कहीं पर विश्राम कर।
जैसा कुछ होना है वह होनहार होकर रहे,
टालने का यत्न चाहे, सुबह और शाम कर ॥
बीती को बिसार करके, आगे का अब ध्यान करले,
प्राणी हों प्रसन्न सभी, ऐसे ऐसे काम कर।
आने और जाने का जो बन्धन है वो टूट जाय;
ऐसी जगह जाय करके 'धर्मी' अपन धाम कर ॥

* कवित्त नं०—२२ *

'धर्मी' को ज्यूं धर्म प्यारा, कुकर्मी को खोटा काम,
जारनी को जार और वीर को कटारी है।
त्रिया को ज्यूं भूषण प्यारा योगी को एकान्त वास,
चोर को अन्धेरी और धनी को उजारी है॥
मृग को ज्यूं वीणा प्यारी पतंगा को दीपक लोय,
सर्प को ज्यूं मणि और मीना को ज्यूं वारी है।
मोर को ज्यूं मेघ प्यारा चांदनी चकोर को ज्यूं,
तैसे 'धर्मवीर' को भी ईश्वर भक्ति प्यारी है॥

* कवित्त नं०—२३ *

राज पाट ठाट और प्यारा परिवार छूटे,
धीरज उसे कहैं जो कि धीर तब भी धरता है।
आपत्ति के समय मित्र, मित्र का जो साथ देता,
मित्र उसे कहैं दुख मित्र के जो हरता है॥
भार्या वही है पति भार की जो भागी बने,
बस्ती छोड़ बन के अन्दर चाहे कष्ट भरता है।
तन के ऊपर वस्त्र पास पैसा धेला पाई नहीं,
'धर्मी' धर्म वह है जो कि तब भी धर्म करता है।

* कवित्त नं०—२४ *

औरों को उजाड़ने की उल्लू जैसी वृत्ति धारी,
भेड़िया सी हिंसा वृत्ति तूने अपनाई है।

माता पिता बहिन बन्धु पड़ौसी के साथ निश दिन,
श्वान का स्वभाव करके करता तू लड़ाई है ॥
कामी इतना बना तूने चिड़ा को भी मात किया,
गरुड की घमण्ड वृत्ति हृदय में समाई है।
गिद्ध के समान 'धर्मी' औरों के तू छिद्र देखे,
मानवता ले सीख तूने मानवता भुलाई है ॥

* कवित्त नं०—२५ *

काम के वश होकर हाथी सुध बुध सारी भूल जाता,
बन्धन में फंस करके सारे जीवन को बिताता है।
रसना के आधीन होकर मीना जाल बीच फंसती,
वीणा की झंकार हेत मृग मारा जाता है ॥
नासिका आधीन भंवरा फूल बीच प्राण खोवे,
पतंगा भी रूप देख प्राण को गंवाता है।
'धर्मवीर' पांचों विषय तेरे साथ लगे हुए,
पांचों ही को जीत गीत आनन्द के गाता है ॥

* कवित्त नं०—२६ *

स्वायम्भुव,स्वारोचिष, उत्तम,तामस, रैवत पांचवां है,
चाक्षुष है छठा सप्तम वैवस्वत अब आयो है।
आठवां सावर्णी, दक्ष सावर्णी मन्वन्तर नौवां,
दसवां ब्रह्म सावर्णी के नाम से बतायो है ॥
ग्यारहं धर्म सावर्णी, अरु बारह रुद्र सावर्णी है,

त्रयोदश मन्वन्तर देव सावर्णी कहायो है।
'धर्मी' अन्तिम मन्वन्तर का नाम इन्द्र सावर्णी है,
चौदह हैं मन्वन्तर जिनको तुकबन्दी में गायो है ।।

* कवित्त नं०—२७ *

औरों की जो राय लेकर राजा का नित काम करे,
जिसका ऐसा मंत्री निश्चय उस राजा की ख्वारी हो।
गुरु यदि पूछ करके शिष्य की पढ़ाई करे,
रात दिन पढ़ाई करो योग्य ना ब्रह्मचारी हो ।।
खाने को जो मांगे रोगी वैद्य उसे देता रहे,
यत्न चाहे लाख करो दूर न बीमारी हो।
'धर्मवीर' प्रातः सायं चकले में जो जाया करे,
अखाड़े में कूदे नित्य कभी न बलकारी हो ।।

* कवित्त नं०—२८ *

युद्ध के समय में इधर उधर जो जन खड़े हुये,
वीर पुरुष उनके ऊपर शस्त्र को चलावे ना।
शस्त्रहीन हाथ जोड़े शरण में जो आये शत्रु,
शरणागत को शरण देवे कभी भी चिड़ावे ना ।।
सोये हुये जन कहीं, मूर्च्छित जो पड़े हुये,
उनको कभी मारे नहीं डरे को डरावे ना।
सिर के बाल खुले जिसके नपुंसक और घायल मिले,
'धर्मवीर' धर्मी उसे कदापि सतावे ना ।।

* कवित्त नं०—२६ *

जीवन के निर्वाह हेतु दूसरों की हिंसा करे,
ऐसे जीने से तो 'धर्मी' मर जाना ही अच्छा है।
हीजड़ा ही रहना अच्छा पर स्त्री के प्यार से तो,
कल्पित गाथा गाने से तो ना गाना ही अच्छा है।
प्रेम और श्रद्धा रहित उत्तम खान पान मिले,
ऐसे खाने से तो भला ना खाना ही अच्छा है।
झूठ बोलने से भला चुपचाप बैठा रहे,
जिस पद का अनादर होवे ना पाना ही अच्छा है ।।

* कवित्त नं०—३० *

ऋण का लेन देन करे बिना स्वामी वस्तु बेचे,
साझे का व्यवहार करे धरोहर भी धरता है।
दान में दिये को बरते भृत्य को ना वेतन देत,
प्रतिज्ञा निभावे नहीं चोरी सदा करता है ।।
बिना झगड़े सौदा न हो पशुओं की भूमि को तोड़े,
सीमा को मिटावे सदा बिना बात लड़ता है।
जूआ का खिलाड़ी पूरा नार त्याग नार छेड़े,
'धर्मवीर' ऐसा जन जो नर्क बीच पड़ता है ।।

* कवित्त नं०—३१ *

चन्दन पछतात हाथ भंगी के बिक जात जब,
हीरा पछताता हाथ मूढ के में जायके।

विधवा पछतात रात अन्धियारी को पावे जब,
चोर पछतात रात उजियारी को पायके ।।
शूर पछतात हाथ शस्त्र के विहीन पाय,
कूर पछतात हाथ शस्त्र को उठायके ।
नारी पछतात साथ कायर पति पावे जब,
ज्ञानी पछतात साथ मूढ़ को लगाय के ।।

* कवित्त नं०—३२ *

राष्ट्र हो सुराष्ट्र अपना यज्ञधारी होवे द्विज,
शत्रुओं का नाश करें क्षत्रिय बलकारी हों ।
गौवें हों दुधारी और अश्व तीव्र गति वाले,
राष्ट्र का निर्माण करें पतिव्रता नारी हों ।।
यज्ञमानों के पुत्र सभी वीर और सभ्य होवें,
वर्षा तब होवे जब इच्छायें हमारी हों ।
'धर्मवीर' निर्भयता से सदा ही स्वाधीन रहें,
फल फूल देने वाली औषधि भी सारी हों ।।

* कवित्त नं०—३३ *

'धर्मवीर' देखे जग में मान के स्थान पांच,
माया जिस पर पहुँच जाय उसी को पुजाती है ।
जिसका हो परिवार बड़ा सभी जन बलवान होवें,
प्रातः सायं नगरी उसके गीत सभी गाती है ।।
आयु में जो अधिक होवे सभी जन प्रणाम करें,

उत्तम कर्म करे जो भी देश होता साथी है।
देश हो विदेश चाहे निर्भयता से घूमता है,
सभी गुरु कहें उसे विद्या जिस पर आती है ।

* (१६–संस्कार) कवित्त नं०–३४ *

गर्भाधान, पुंसवन तीजो है सीमन्तोन्नयन,
चौथा जातकर्म जिसमें नाल कटवायो है।
नामकरण, निष्क्रमण और सप्तम अन्नप्राशन जान,
अष्टम चूड़ाकर्म जिसमें मूंड को मुंडायो है ।।
नौवां कर्णवेध, उपनयन दसवां जानो सभी,
वेदारम्भ ग्यारह आगे समावर्त्तन आयो है।
तेरहवां है विवाह और वानप्रस्थ चौदहवां है,
पन्द्रहवां संन्यास अन्तिम अन्त्येष्टि कहायो है ।।

* (अक्षोहिणी) कवित्त नं०–३५ *

अक्षौहिणी की संख्या सुनो रथ घोड़े हाथी जन,
कितने कितने होते सारे न्यारे सब गिनाते हैं,
इक्कीस सहस्र आठ सौ सत्तर जिससे अन्दर हाथी हं ते,
छै सौ दस अरु पैंसठ सहस्र घोड़े दौड़ लगाते हैं ।।
एक लाख नौ सहस्र तीन सौ पचास पैदल,
हाथियों की गिनती जितनी रथ भी उतने पाते हैं।
द्वै लाख बासठ सहस्र चार सौ चालीस की संख्या,
अक्षौहिणी के मनुष्यों की 'धर्मी' जी बताते हैं ।।

* (८ कसाई) कवित्त नं०—३६ *

राय के जो देने वाला वो भी जन पापी होता,
वह भी जन पापी जो कि मारने को लाता है।
वह भी जन पापी होता बूचड़ को जो बेचता है,
वह भी जन पापी होता जो कि मार कर गिराता है॥
मांस को पकाकर देता वह भी जन पापी होता,
वह भी जन पापी काट टुकड़े जो बनाता है।
खाने के हित देने वाला वह भी जन पापी होता,
सबसे बड़ा पापी 'धर्मी' मांस को जो खाता है॥

* कवित्त नं०—३७ *

सत क्रिया से हीन,मनुष्य जिस कुल अन्दर होते होवें,
जिस कुल अन्दर भले मनुष्य जन्म नहीं पाते हैं।
जिस कुल वाले मनुष्यों के देह ऊपर बाल होवें,
जिस कुल अन्दर वेद कभी पढ़ें ना पढ़ाते हैं॥
श्वेत कुष्ठी.गलित कुष्ठी, मृगी वाले जिस कुल में हों,
आमाशय के रोगी जहां कष्ट नित ठाते हैं।
बवासीर तपैदिक के रोगी जहां पैदा होते,
'धर्मी' उन कुलों में अपने विवाह ना कराते हैं॥

* (८४ लक्षयोनी) कवित्त नं०—३८ *

योनियों में ग्यारह लक्ष कृमि का बयान करें,
दस लाख पक्षी जिनका वृक्षों पै बसेरा है।

तेईस लाख चौपाये बन बस्ती के बताये जायें,
चार लाख मानव जिसका दुनिया भर में फेरा है ॥
स्थावर की योनि लाख सताईस शुम्मार करें,
चलना फिरना बन्द जिनका एक जगह डेरा है ।
तीन तोया लाख जीव जल के अन्दर वास करें,
'धर्मवीर' जहां रहता दिन में भी अन्धेरा है ॥

* कवित्त नं०—३६ *

जहां की उपजाऊ भूमि सारे अन्न पैदा करे,
आस पास बसने वाले भले नर नारी हों ।
रिपु सेना आने की जहां लेशमात्र शंका ना हो,
वायु हो सुगन्धित जहां कभी ना बीमारी हो ॥
सुगमता के साथ जहां जीवन के सब साधन होवें,
फूलों वाली लताओं से हरी भरी क्यारी हों ।
ऐसा हो प्रदेश जहां वहां भूप वास करे,
'धर्मी' करें धर्म नित्य मोक्ष के अधिकारी हों ॥

* कवित्त नं०—४० *

धीरज का जो धारण करना प्रथम लक्षण धर्म का है,
दूजा लक्षण धर्म का जो क्षमा का बतायो है ।
तीजा लक्षण धर्म का है मन को सदा वश में राखो,
चौथे चोरी त्याग पञ्चम शौच का कहायो है ॥
छठा लक्षण कुमार्ग से इन्द्रिय बचाने का है,

सप्तम बुद्धि विद्या नम्बर आठवें पै आयो है।
नौवां नम्बर सत्य का है दसवां क्रोध त्याग का है,
मनु जी का कथन ऐसा 'धर्मी' ने सुनायो है॥

※ कवित्त नं०—४१ ※

हिंसा, वैर, बुद्धि और चोरी तीजा लक्षण जानो,
चौथा भ्रष्ट अविद्या का पांचवां बतायो है।
अधर्म और मद्यपान आठवां असत्य जानो,
नौवां लक्षण अधर्म का अधैर्य कहायो है॥
दुर्व्यसनों में फंसी सारी इन्द्रियां सदैव रहैं,
ग्यारहवां है क्रोध जोकि दुर्जन को भायो है।
धर्म के दस लक्षण श्री मनु ने बताये धर्मी,
अधर्म का भी वर्णन गुणी गवैयों ने गायो है॥

※ कवित्त नं०—४२ ※

पीले वर्ण वाली और अंग जिसके अधिक होते,
जीवन भर के रहने वाले रोग जिसमें पाते हैं।
जिस नारी के सारे तन पर बाल कहीं होते नहीं,
जिसके तन पर अधिक बाल देखने में आते हैं॥
बिल्ली वाले नेत्र जिसके, व्यर्थ की बकवास करे,
कड़वे बोले बोल, बोल प्रेम के ना भाते हैं।
नाम हो नक्षत्र, नदी, पक्षी, सर्प, दासी, भीषण,
'धर्मी' उनके संग में अपना विवाह ना कराते हैं॥

* कवित्त नं०—४३ *

ब्रह्मचारी मन में कभी नारी का ना ध्यान करे,
गन्दी गाथा सुने नहीं, किसी को सुनावे ना।
ब्रह्मचारी कभी नहीं नारी को स्पर्श करे,
कभी अपना अंग किसी नारी से भिड़ावे ना॥
ब्रह्मचारी दृष्टि भर कर नारी का ना दर्शन करे,
नारियों के साथ खेल मिल करके रचावे ना।
ब्रह्मचारी समागम ना स्वप्न में भी करे कभी,
नारी संग एकान्त 'धर्मी' समय को बितावे ना॥

* (१४ रत्न) कवित्त नं०—४४ *

धर्मवीर रत्न चौदह उनके सब के नाम सुनो,
एक-एक करके पूरे चौदह ही बताना है।
प्रथम हाथी, दूजा घोड़ा, तीजा रथ को जान लेना,
भार्य्या है चौथी और बाण पञ्चम माना है॥
छटवीं माला वस्त्र सप्तम आठवां उद्यान समझो,
नौवीं शक्ति दसवां समझो कोष या खजाना है।
ग्यारहवां है पाश, मणि बारह छत्र तेरहवां है,
चौदहवां विमान जो कि गगन में उड़ाना है॥

* (९ रस) कवित्त नं०—४५ *

नौ भांति के रस हैं 'धर्मी' उन्हें अब बयान करूं,
गाने वाले गाना इन्हीं रसों में सुनाते हैं।

वीर रस से वीर करें, रौद्र से रुलाया करें,
हास्य रस में गाकर अपनी जनता को हंसाते हैं ॥
करुणा रस से दयालु अरु अद्भुत रस से चकित करें,
भयानक को सुना करके सभी को डराते हैं ।
शान्त रस से शान्ति और वीभत्स से घृणा करें,
नौवां रस सिंगार जिसे गा करके रिझाते हैं ॥

* कवित्त नं०–४६ *

दिन भर चांद निकला रहे किसी को भी भावे नहीं,
कामिनी ना भावे जो कि वृद्ध रुग्ण होती है ।
सुन्दर ना सरोवर लगे जिसमें कमल होता नहीं,
किसी को ना भावे जोकि बिना आब मोती है ॥
मुखड़ा ना वह सुन्दर लगे मधुर बोल बोले नहीं,
निर्धनता जब बुरी लगे प्यारी पुत्री रोती है ।
लोभी स्वामी बुरा लगे, सज्जनों में दुर्जन बुरा,
'धर्मवीर' चाहे निजी साथी नाती गोती है ॥

* कवित्त नं०–४७ *

सेवक यदि दूर बैंठे उसे काम चोर कहैं,
पास यदि बैठे कहें निर्लज्जा कमीना है ।
यदि बातें करे नहीं तब तो उसे गूंगा कहैं,
बातें यदि करे कहैं बातों में प्रवीणा है ॥
पीछे होकर बात सुने तब उसे डरपोक कहैं,

आगे होकर कहे, कहैं बड़ा ही अकुलीना है।
'धर्मवीर' किसी भांति सेवक को सुख होता नहीं,
ऐसे जन का जग में कहो जीने में क्या जीना है॥

* कवित्त नं०—४८ *

छिपाकर जो दान देवे, अतिथि का मान करे,
भलाई को करके कभी किसी को सुनावे ना।
और जो उपकार करे, उसे बार बार कहे,
सम्पत्ति को पाकर कभी ईश को भुलावे ना॥
किसी के सम्बन्ध की जो किसी से भी बात करे,
उसे ऐसे ढंग से कहे बुरी गन्ध आवे ना।
'धर्मवीर' ऐसे जन को सभी महापुरुष कहैं,
ऐसा जन जीवन भर में कभी पछतावे ना॥

* कवित्त नं०—४९ *

तृष्णा को छोड़ सदा क्षमा को जो धारण करे,
अपने गुण गौरव को देखकर हरषावे ना।
पापों से जो परे रहे, सत्य सदा बोले बोल,
सत्पुरुषों के मार्ग को जो जीवन भर भुलावे ना॥
वृद्ध जन का मान करे, विद्वानों का संग सदा,
दीन और दुखियाओं को कभी भी सतावे ना।
'धर्मवीर' अपने ढंग से शत्रु को प्रसन्न करे,
ऐसा जन जीवन भर कष्ट कभी पावे ना॥

*** (१८ पुराण) कवित्त नं०—५० ***

अट्ठारह पुराण हैं जो तुम्हें उनके नाम कहें,
भागवत पुराण ब्रह्म-वैवर्त पुराण है।
भविष्य पुराण नाम, मारकण्डेय नाम सुनो,
शिव है पुराण जिसमें शिव का बखान है॥
अग्नि, कूर्म, वामन, विष्णु नारद, गरुड़ नाम सुनो,
लिंग भी है नाम सुनकर होता जन हैरान है।
बराह, पद्म, मत्स्य, ब्रह्म, सत्रहवां ब्रह्माण्ड सुनो,
अठारहवाँ स्कन्ध सुनो, 'धर्मी' का बयान है॥

*** कवित्त नं०—५१ ***

आठ खस-खस मिलकर एक चावल के समान होतीं,
आठ चावल मिलकर एक रत्ती कहाती है।
आठ रत्ती मिलकर माशा, बारह माशे तोला होता,
पांच तोला तोल एक छटंकी बनाती है॥
सोलह हों छटंकी उनका मिलकर एक सेर होता,
चालीस सेर तुल जाने पर मन की तोल आती है।
'धर्मवीर' मन की तोल जबकि ढाई गुणी करे,
ऐसी तोल दुनिया पढ़ी भार की बताती है॥

*** कवित्त नं०—५२ ***

बिना भूप भूषण कोई भली नारी पहने नहीं,
बिना भूप करे कौन किसकी सुनाई है।

बिना भूप गौवों की ना रक्षा कोई ग्वाला करे,
बिना भूप करे कौन किसकी सहाई है ।।
बिना भूप वणिक कहीं दूर ना व्यापार करे,
बिना भूप होती सदा चौड़े में लुटाई है।
बिना भूप किससे कोई जा करके फरियाद करे,
बिना भूप होती 'धर्मी' निर्बल की पिटाई है ।।

* कवित्त नं०–५३ *

नास्तिक हो झूठ बोले, शीघ्र कभी सोचे नहीं,
ज्ञानियों से दूर रहे क्रोध का भण्डार है।
आलसी हो पूरा और काम में प्रमाद करे,
इन्द्रियों का दास होकर करता जीवन ख्वार है ।।
मूर्खों से राय लेता, गुप्त बात खोल देता,
बहु शत्रुओं से करे एक बार रार है।
अकेला विचार करे भला काम शीघ्र ना हो,
'धर्मी' राखे घर में सदा यज्ञ की भी टार है ।।

* कवित्त नं०–५४ *

क्रोध से उत्पन्न व्यसन धर्मवीर होते अष्ट,
विषयों में नित्य प्रति धन का लगाना है।
जहां बैठे चुगली करे बिना बात द्रोह करे,
ईर्ष्या का जिसके पास अमिट खजाना है ।।
बिना दोष दण्ड देवे कडवे बोल बोलता है,

सातवां बलात्कार व्यसन सबने माना है।
निन्दा का है व्यसन जैसा जन जानते हैं,
निर्दोषी को दोषी, दोषी निर्दोषी बताना है ॥

* कवित्त नं०—५५ *

काम से उत्पन्न व्यसन धर्मवीर होते दस,
चौपड़ जुआ मृगया का खेलना भी आता है।
जहाँ पर भी बैठे वहीं काम कथा छेड़े सुने,
मद्य, मांस, चरस, चण्डू मन को अति भाता है ॥
दिन में कई बार सोवे स्त्रियों का संग करे,
झूम झूम गन्दे गाने रात दिन गाता है।
नाच का कराना और देखना व्यसन है नौवां,
दसवां व्यसन इधर उधर घूमना कहाता है ॥

* कवित्त नं०—५६ *

चौराहे पर जाल रचे श्मशानों मैं पहुँच जाय,
पति को परलोक भेजे नैक ना लजाती है ॥
बेसमझी के काम करै झूठ बार बार कहे,
चंचल स्वभाव की हो गन्दगी मन भाती है ॥
देखे में भी एर फेर, अन्धेरे में घुसे नहीं,
पड़ौसी का लाल घाट मौत के पठाती है।
धर्मवीर आठ अवगुण जिसके उर के मांह बसें,
फिर भी ऐसी नार पतिभार्या कहाती है ॥

* कवित्त नं०—५७ *

बिना भूप 'धर्मी' प्रजा कभी सुख से सोती नहीं,
दीन हीन निर्बल सदा निश वासर ही रोता है।
पिता और पति का नहीं पुत्र पत्नी आदर करे,
कृषक भी समय पर नहीं अपनी भूमि बोता है॥
जनता धन से हीन होवे चोर डाकू इतने बढ़ें,
कोई जन भी सुख की नींद कभी नहीं सोता है।
सत्य का व्यवहार छूटे धर्म सभा होती नहीं,
लैना दैना छूटे सभी मानव दानव होता है॥

* कवित्त नं०—५८ *

नौकरी करने से उसके गौरवता का नाश होता,
नाश होता चाँदनी से जैसे अन्धकार का।
बुढ़ापे के आ जाने पर यत्न चाहे लाख करो,
रूप नष्ट हो जाता है सभी पुरुष नार का॥
ईश्वर की हो भक्ति जहां प्रातः सायं घर के अन्दर,
नाम मिट जाये वहां दुष्ट चोर जार का।
पाखण्ड मिट जाये वहां, वेद का प्रचार जहां,
नर्क धाम कहां, जहां धाम मुक्ति द्वार का॥

* कवित्त नं०—५९ *

कहने की जो बात नहीं उसे सबसे कहता फिरे,

कहने वाली बातों को जो सबसे ही छुपाता है।

माँगने की आदत पूरी क्रोध का भण्डार भरा,
सत्य से ग्लानि बात झूठी ही बनाता है ॥
बिना बात द्वेष करे जूआ का खिलाड़ी पूरा,
दयाहीन होकर सदा दीनों को सताता है ।
चित्त में ना शान्ति का किसी समय वास रहे,
'धर्मी' जन ऐसा जन मित्र ना कहाता है ॥

❋ कवित्त नं०—६० ❋

'धर्मवीर' वन के अन्दर वन वृक्षों पर सोना अच्छा,
अच्छा समझो घास फूंस फल फूलों का खाना है ।
जल का हो अभाव जहाँ वहां रहना अच्छा समझो,
बिना वस्त्र अच्छा मास माघ का बिताना है ॥
सिंहों की दहाड़ जहाँ वहां निश में रहना अच्छा,
अच्छा समझो जहाँ रहता हाथियों का आना है ।
भाइयों के बीच सदा धनी बनके रहना अच्छा,
बिना धन के महा मूढ़ पशु ही कहाना है ॥

❋ कवित्त नं०—६१ ❋

घर में पुत्र होता नहीं उसका भी कुछ दुःख होता,
हो करके मर जाए उससे दूना दुख होता है ।
जीवित पुत्र रहे किन्तु महा मतिमन्द होवे,
जिसको देख देख करके बार बार रोता है ।
प्रथम दोनों दशा अपनी स्वप्नवत् समझो सभी

तीजो दशा देख खाय दुख सागर में गोता है।
'धर्मवीर' अच्छा वो है जिसने विवाह किया नहीं,
गर्मी सर्दी सुख की नींद चादर तान सोता है॥

* कवित्त नं०—६२ *

सुख के साधन पाँच जिन्हें भाग्यशाली पाया करें,
जितना चाहें उतना धन नित्य प्रति आता है।
देह हो सुडोल सुन्दर रोग पास आवे नहीं,
प्राण प्यारी नारी देख, देख हर्षाता है॥
पुत्र हो सुपात्र घर में आज्ञा का जो पालन करे,
जो भी जन देखे उसे, उसी के मन भाता है।
विद्या इतनी प्राप्त होवे, वेद शास्त्र सरल होवें,
जिनको पढ़ पढ़ के 'धर्मी' फूला ना समाता है॥

* कवित्त नं०—६३ *

रेवती और रोहिणी नक्षत्र वाले नाम की जो,
गंगा यमुना नदियों वाली नाम की जो नारी है।
कोकिला और मैना आदि पक्षियों के नाम की जो,
दासी, उरगा, सर्पणी जो भीषण नामधारी है॥
कालिका और चण्डिका के नाम की भी नारी होती,
चम्पा व चमेली गैंदा कोई हर प्यारी है।
हिमालिया और विन्ध्याचला पर्वतों के नाम वाली,
'धर्मी' इनसे विवाह करे होती उसकी ख्वारी है॥

* कवित्त नं०—६४ *

अंग प्रति अंग जिसके देखने में सुन्दर होवें,
सभी चाहें सुनना ऐसी बोले मधुर वाणी है।
उत्तम होवे नाम जिसे सभी जन बोल सकें,
हथनी वाली चले चाल सदा मन मानी है॥
सूक्ष्म हों केश सारे सूक्ष्म हों लोम तन के,
सूक्ष्म हों दान्त जिसके सभी को सुहानी है।
ऐसी लक्षण वाली नार 'धर्मवीर' जो भी होवे,
उसके संग ब्याह करो ऋषियों ने बखानी है॥

* कवित्त नं०—६५ *

आश्रम हैं चार 'धर्मी' सबसे बड़ा कौन सा है,
किस कारण से बड़ा है वो यह भी हम बताते हैं।
संन्यासी का ज्ञान बड़ा जहां कहीं जाते हैं वो,
तीनों आश्रम के अन्दर बड़े माने जाते हैं॥
ब्रह्मचर्य के बिना तीनों आश्रम निकम्मे रहें,
वानप्रस्थी बन करके ही विद्या का सुख पाते हैं।
अपनी अपनी ठौड़ बड़े किन्तु गृहस्थी सबसे बड़ा,
क्योंकि तीनों घर पर सदा गृहस्थी के ही खाते हैं॥

* कवित्त नं०—६६ *

पांच यम और पांच नियम दोनों का जो पालन करे,
तीन घण्टा सीधा बैठ आसन जो लगाता है।

श्वास का जो आना जाना उस पर अधिकार करे,
स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन नित्य प्रति खाता है ।।
ईश को आधार मान उसका ही नित ध्यान करे,
समाधी में बैठ करके ईश दर्शन पाता है ।
छत्तीस हजार बार महा प्रलय होती रहे,
'धर्मवीर' लौट करके फेर जग में आता है ।।

* कवित्त नं० - ६७ *

राज के जो करने वाला दण्ड को वह धारण करे,
बिना दण्ड राजा नहीं राज कर पाता है ।
दण्ड के ही द्वारा धर्म मर्यादा का पालन होता,
बिना दण्ड चोर जार सब ही को सताता है ।।
दण्ड के ही द्वारा धर्म अर्थ की भी सिद्धि होती,
जिसको पाकर सुख सारी जनता में बढ़ाता है ।
'धर्मवीर' जो भी राजा दण्ड को ना धारण करे,
ऐसा राजा थोड़े दिन में रसातल को जाता है ।।

* कवित्त नं०—६८ *

वेद और शास्त्रों के जो भी जन विद्वान् होवें,
वो ही राज करने वाले बड़े अधिकारी हों ।
धर्म के पुजारी और सभी जन सुशील होवें,
इन्द्रियों को जीत करके पूर्ण ब्रह्मचारी हों ।।
सभी विद्या जाने उन्हें मुख्य न्यायाधीश करें,

झूठ से हो घृणा जिन्हें सत्य के पुजारी हों।
राज हो सुराज कहीं दुष्ट जन पावें नहीं,
'धर्मी' सभी धनी होवें कही ना भिखारी हों॥

* कवित्त नं०—६९ *

दस हों विद्वान् पूर्ण जिनकी एक सभा होवे,
जैसे कुछ बनावें नियम सभी को स्वीकार हों।
चारों वेद पढ़े हुये संन्यासी की मानें सभी,
मूर्खों की मानो मत मूर्ख चाहे हजार हों॥
वेद विद्या पढ़े नहीं सत्य भाषण करते नहीं,
उनकी सभा होती नहीं मूढ़ या गंवार हों।
राज, धर्म विद्या सभा तीनों में मत भर्ती करो,
भले कर्म करते नहीं, करते पापाचार हों॥

* कवित्त नं०—७० *

'धर्मवीर' बूढ़ा इतना चलना फिरना होता नहीं,
पतिव्रता नार फिर भी सदा सेवा ठाती है।
अनेकों तन रोग रहें पूरा बुद्धिहीन होवे,
काम हों अधूरे क्योंकि निर्धनता सताती है॥
नेत्रों से हीन ऐसा कुछ भी उसे दीखे नहीं,
वधिर इतना ध्वनि किसी यन्त्र की ना आती है।
क्रोध इतना चढ़ा रहे प्रेम की ना बात करे,
फिर भी उसका साथ सदा प्रेम से निभाती है॥

* कवित्त नं०—७१ *

मद्य के नित प्याले पीवे अण्डा मांस खाय खूब,
बीड़ी सिगरेट पीकर धुवां दिन भर उड़ाता है।
वेद कथा भावे नहीं सन्तों की ना वाणी सुने,
स्वांग व सिनेमा देखे औरों को दिखाता है॥
मानवता सब दूर करी दानवता को धार लिया,
बूढ़ों की उड़ावें हंसी नैंक ना लजाता है।
बांसुरी बजावे खूब गली गली घूमता है,
परिवारों में बैठ बैठ गन्दे गाने गाता है॥

* कवित्त नं०—७२ *

भूमि सूरज चन्द्र तारे सभी नित्य घूमते हैं,
जड़ हैं पदार्थ सारे इन्हें जो घुमाता है।
सृष्टि की रचना को देखो किस भांति से रची हुई,
अपने आप रची नहीं इसे जो रचाता है॥
जलचर थलचर नभचर सारे जितने जीव दीखते हैं,
इनकी न्यारी न्यारी सूरत जो भी कोई बनाता है।
'धर्मवीर' वार पार कभी उसका पाया नहीं,
मुख्य नाम उसका केवल ओ३म् नाम पाता है॥

* कवित्त नं०—७३ *

कोई जन नित्य मांगे कोई नित्य करे दान,
किसी के भण्डार भरे किसी के ना धेला है।

घूम करके देखी दुनिया देखकर हैरान हूं मैं,
किसी के परिवार घना कोई जन अकेला है ॥
कोई विद्या सीखता है, कोई है सिखाने वाला,
कोई बना गुरु और कोई बना चेला है।
वैर भाव त्याग करके सभी के संग मेल करो,
क्योंकि धर्मवीर दुनिया थोड़े दिन का मेला है ॥

* कवित्त नं०—७४ *

सन्ध्या में उन्नीस मन्त्र जो कि नौ प्रकार के हैं,
क्या-क्या उनके नाम सुनो तुम्हें हम सुनाते हैं।
आचमन है प्रथम दूजा इन्द्रियों का छूना सुनो,
मार्जन है तीजा जल को अंगों पै लगाते हैं ॥
चौथा प्राणायाम पंचम अघमर्षण है नाम सुनो,
मनसा परिक्रमा है छठा मन को सब घुमाते हैं।
मन्त्र उपस्थान सप्तम आठवां है गुरु मन्त्र,
नौवां नमस्कार 'धर्मी' शीश को झुकाते हैं ॥

* कवित्त नं०—७५ *

शोक से हो कायर बच्चा, काम की इच्छा से कामी,
बुरी वस्तु देखने से, बुरा बच्चा होवेगा।
अधिक भोजन से हो कुबड़ा, रोवेगी तो चुन्धा होगा,
सोने वाली का जो बच्चा दिन भर पड़ा सोवेगा ॥
तेल की मालिश से कोढ़ी, दौड़ेगी तो डाकू होगा,

सुरमा वाली का जो बच्चा, सूरज देख रोवेगा।
हंसेगी तो दान्तू होगा बोलेगी तो बक्की होय,
शोर वाली के हो बहरा, दुख में जीवन खोवेगा ॥

*** (८ विवाह) कवित्त नं०—७६ ***

आठ हैं विवाह जिनमें चार उत्तम कहे जाते,
भले मनुष्य करें उन्हें औरों के कराते हैं।
ब्राह्म है विवाह प्रथम दूजा दैव जान लीजो,
आर्ष है विवाह, चौथा प्राजापत्य बताते हैं ॥
आसुर, गान्धर्व, सप्तम राक्षस विवाह समझो,
आठवां पैशाच विवाह करके ना हरषाते हैं।
कैसे-कैसे करते आठों मनु ने बयान किया,
पढ़े हुए 'धर्मी' उन्हें पढ़ करके सुनाते हैं ॥

*** कवित्त नं०—७७ ***

'धर्मी' हैं स्थान आठ मान के कराने वाले,
मान उसका होता जिसे होता पूर्ण ज्ञान है।
दादा परदादा जिसके मान के अधिकारी रहे,
आप भी यदि वैसा ही है होता उसका मान है ॥
वेदों का जो पाठ करे इन्द्रियों का दास न हो,
दीनों की जो रक्षा करे ऐसा जो बलवान् है।
भले का अहसान माने, अधिक कभी बोले नहीं,
शक्ति के अनुसार नित्य करता रहता दान है ॥

* कवित्त नं०—७८ *

प्रथम है अहिंसा किसी प्राणी से ना वैर करे,
अपना जैसा समझ सबको प्रीत ही निभाता है।
दूसरा है सत्य कहीं जैसा देखा सुना हुआ,
पूछने पर ज्यूं का त्यूं ही और को बताता है॥
तीसरा है चोरी बिना आज्ञा कुछ ठावे नहीं,
चौथा सभी इन्द्रियों को विषयों से बचाता है।
पांचवां अभिमान 'धर्मी' पास में न आने देवे,
यम हैं यही पांच पालन करके सुख पाता है॥

* कवित्त नं०—७९ *

जल से शुद्धि बाहर की हो भीतर की सत्संग द्वारा,
दोनों भाँति शुद्धि करना शौच ही कहाता है।
दूसरा सन्तोष, जो है प्राप्त उसे अपना कहे,
तीसरा है तप, कष्ट धर्म हित उठाता है॥
चौथा नियम वेद का है नित्य प्रति पाठ करे,
पांचवां है सभी कुछ ईश्वर का बताता है।
पांच यम और पांच नियम जो भी 'धर्मी' पालन करे,
वो ही मार्ग ईश पास जाने का बनाता है॥

* कवित्त नं०—८० *

अहिंसा का व्रत 'धर्मी' जो भी जन धार लेता,
सभी प्राणियों का वैर उससे छूट जाता है।

सत्य का जो प्रेमी उसका सभी काम ठीक होता,
चोरी का कर त्याग फल यथा योग्य पाता है ।।
ब्रह्मचर्य का पालन करे दो भांति का ओज बढ़े,
सुन्दर हो शरीर बुद्धि खोज की जो दाता हैं ।
कौन हूं कहां से आया क्या कुछ करना शेष अभी,
पांचवां जो यम है उसका फल ही ऐसा आता है ।।

* कवित्त नं०—८१ *

बाहर और भीतर से जो 'धर्मी' सदा स्वच्छ रहे,
वह ही अपनी आत्मा को ठीक जान पाता है ।
जब होवे सन्तोष जिसे सुख नहीं शेष रहता,
तप का जो अभ्यासी उसे रोग ना सताता है ।।
ईश्वर की जो वाणी उसका नित्य ही स्वाध्याय करे,
कुछ दिन में ही मेल अपना ईश्वर से मिलाता है ।
प्रणिधान, जिसका जो है उसे ठीक जान लेता,
वो ही प्राणी समाधि में बहुत शीघ्र आता है ।।

* कवित्त नं०—८२ *

सोच करो उस ब्राह्मण का वेद यदि पढ़ता नहीं,
सोच करो उस क्षत्रिय का रक्षा नहीं करता है ।
सोच करो उस बनिये का धन जो जोड़-जोड़ धरे,
सोच करो उस सेवक का स्वामी से जो लड़ता है ।।
सोच करो उस पत्नी का पति से जो कपट करे,

सोच करो उस राजा का नीति नहीं पढ़ता है ।
सोच करो उस तपसी का भोग में जो फंसा रहे,
सोच करो उस धर्मी का अधर्म सर पै धरता है ।।

* कवित्त नं०—८३ *

हाथ में जो शस्त्र राखे मर्म की जो बात जाने,
ऐसे जन के साथ कभी वैर भाव ठाने ना ।
जीवन हो निर्वाह जिससे उससे कभी वैर ना हो,
मूर्ख और वैद्य जन को कभी अपना जाने ना ।।
भाट और कवि जन जो उनके अनुकूल रहो,
कहीं मित्र मण्डली में बुराई बखाने ना ।
धनवानों से मेल और पाचक के संग प्यार करो,
ज्ञानी ऐसा माने पर मूर्ख ऐसा माने ना ।।

* कवित्त नं०—८४ *

दुष्ट जन के सन्मुख कभी विनय काम देती नहीं,
कुटिल जन से प्रीत करके जीवन भर रोना है ।
प्रेम में जो पागल कोई ज्ञान कथा भावे नहीं,
कामी से न ईश भजन स्वप्न में भी होना है ।।
क्रोधी जन को शान्ति का व्यर्थ ही उपदेश होता,
लोभी को उपदेश देना ऊसर बीज बोना है ।
इन लोगों में रहकर 'धर्मी' धर्म कर्म बनता नहीं,
बल्कि इनके संग में रहकर जीवन व्यर्थ खोना है ।।

❋ कवित्त नं०—८५ ❋

गृहस्थ को किया है पूरा फेर बानप्रस्थी बना,
बन करके संन्यासी नियम अपने को निभाता है ।
अपने जन का सभी जन न्याय में अन्याय करें,
पक्षपात छोड़ न्याय संन्यासी चुकाता है ॥
ज्ञानी व विज्ञानी ब्रह्मचारी जो संन्यासी होता,
वो ही घूम-घूम करके पूरा कर पाता है ।
पूरा ज्ञान प्राप्त करके भवसागर से पार तरे,
'धर्मवीर' पार नैया औरों की लगाता है ॥

❋ कवित्त नं०—८६ ❋

मृतक को जिलाने वाली मृतसंजीवनी थी,
जिसके द्वारा मृतक जन को दोबारा जिलाते थे ।
अस्त्र शस्त्र द्वारा तन में जो भी अनगिन घाव होते,
बूटी है विशल्यकरणी उसी को लगाते थे ॥
घाव का जो रंग है वो पहले जैसा रंग होवे,
इस कारण सावर्ण्यकरणी बूटी लगवाते थे ।
हड्डी टूट जाने पर सन्धान करणी घास लाते,
जिसके द्वारा 'धर्मी' जोड़ शीघ्र जुड़ जाते थे ॥

❋ कवित्त नं०—८७ ❋

चैत्र और वैशाख मास त्रिफला को कूट करके,
शहद में मिलाकर खाओ बुद्धि को बढ़ावेगा ।

जेठ और असाढ़ मास गुड़ के साथ खाया जावे,
पेट को करेगा साफ कब्ज को भगावेगा ॥
सावन और भादों मास सैंधा नमक डाल करके,
जो भी जन खावे उसको दूर तक दिखावेगा ।
क्वार कार्तिक मिश्री, सोंठ अघन पूस मास डालो,
माघ फागुन पीपल 'धर्मी' सदा सुख पावेगा ॥

* कवित्त नं०—८८ *

उत्पत्ति के समय और पालन में जो कष्ट सहती,
उस माता का ऋण कहो कैसे कब चुकाओगे ।
भूखा प्यासा रहकर जिसने सब भांति से पालन किया,
ऐसे पूज्य पिताजी की सेवा कैसे ठाओगे ॥
विद्या का जो दान देकर हृदय में प्रकाश किया,
किस भांति से नाम ऐसे गुरु का चलाओगे ।
'धर्मवीर' वे तीनों हैं महा पूज्य देव तेरे,
उन से लो आशीर्वाद मोक्ष पद पाओगे ॥

* कवित्त नं०—८९ *

किस भांति से न्याय करें, न्याय शास्त्र पढ़कर देखो,
जिसे पूज्यपाद ऋषि गौतम ने बनायो है ।
लेखक हैं कणाद मुनि शास्त्र जो कि वैशेषिक है,
जैमिनि मीमांसा का लेखक कहायो है ॥
सांख्य के हैं कपिल मुनि योग के पतंजलि हैं,

जिनमें सारा सार मानव जीवन को बतायो है ।
शास्त्र है वेदान्त 'धर्मी' लेखक व्यास मुनि जिसके,
कोई जन कहो किसके मन को नहीं भायो है ।।

* (८—अवगुण) कवित्त नं०—९० *

आठ अवगुण 'धर्मवीर' स्वाभाविक हैं स्त्रियों में,
दूर कभी होते नहीं गुणी जन बताते हैं ।
साहस की हैं धनी और झूठ में प्रवीण अति,
जाल ऐसा रचें जिसे देखकर चकराते हैं ।।
हानि और लाभ का कुछ ज्ञान इन्हें होता नहीं,
चंचल हैं स्वभाव की और भय में आगे पाते हैं ।
शुद्धता में पीछे और दया इनसे दूर रहे,
गाने वाले अवगुण इनके कविता में सुनाते हैं ।।

* कवित्त नं०—९१ *

दूध तो बकरी का पीता बकरी माता कहता नहीं,
इसी भांति भेड़ और गधी का भी पीता है ।
भैंस माता कहता हुआ कोई जन देखा नहीं,
किन्तु दूध पीता रहता जब तक जग में जीता है ।।
ऊंटनी का दूध पीता माता कोई कहता नहीं,
पीने वाला राम है या पीने वाली सीता है ।
'धर्मवीर' गौ माता, माता ही है सभी जन की,
चाहे वह कुर्आन पढ़े चाहे पढ़े गीता है ।।

* कवित्त नं०–९२ *

ईश्वर की सृष्टि से नहीं जो भी जन प्यार करे,
ऐसा जन निश्चय जानो ईश्वर नहीं मानता है।
ईश्वर न्यायकारी शक्ति वाला यहां रहता नहीं,
तभी नित्य प्रति झगड़ा औरों के संग ठानता है॥
अपने लिये जैसा चाहे वैसा करे औरों के संग,
मानवता को ठीक-ठीक वो ही जन जानता है।
'धर्मवीर' मूर्खता की कीचड़ से है सना हुआ,
उसी गन्दी कीचड़ से ही औरों को भी सानता है॥

* कवित नं०–९३ *

चाहे कोई निन्दा चाहे स्तुति के गीत गावे,
दोनों को समान समझे ऐसा जिसको ज्ञान है।
कोमल और कड़ी वस्तु एक सी प्रतीत होवे,
सुन्दर और कुरूप जिसे दीखे सब समान है॥
कड़वा जिसे कड़वा और मीठा-मीठा लगे नहीं,
जैसा जहां मिले वैसा करता भोजन पान है।
बुरी और भली से ना दुख सुख होता जिसे,
इन्द्रियों को जीता जिसने वो ही जन महान् है॥

* कवित्त नं०–९४ *

सवारी पै आने वाले जन को मार्ग छोड़ देवे,
छोड़ देवे मार्ग उसको सर पै बोझा भारी है।

छोड़ देवे मार्ग उसको जो बूढ़ा कमजोर होवे,
छोड़ देवे मार्ग उसको जो भी जन दुखारी है ॥
विद्या के जो देने वाला उसको मार्ग छोड़ देवे,
छोड़ देवे मार्ग सन्मुख आती हो जो नारी है ।
सामने से वर और भूप 'धर्मी' आते होवें,
छोड़ देवे मार्ग उन्हें देखे दुनिया सारी है ॥

* कवित्त नं०—९५ *

गुरु के जब पास जाये पैर छू प्रणाम करे,
हाथ जोड़ खड़ा रहे ऊपर को लखावे ना ।
किसी से जब बात करें पास उनके जावे नहीं,
पास उनके बैठ बात औरों से बनावे ना ॥
गुरु जी का आसन जहां सोने का लगाया जाये,
अपना आसन कभी उनसे ऊंचे पर लगावे ना ।
धर्मवीर आज्ञा सदा गुरु जी की पालन करे,
निन्दा कभी करे नहीं औरों से करावे ना ॥

* कवित्त नं०—९६ *

विषयों का जो चिन्तन करे चिन्ता उसे प्राप्त होती,
प्राप्ति के हो जाने पर होता काम वास है ।
कामना में विघ्न बाधा पड़ जाने पर क्रोध होता,
क्रोध की जब ज्वाला भड़के हो बुद्धि का नाश है ॥
बुद्धि नष्ट हो जाने पर सर्वनाश होना ही है,

सर्वनाश हो जाने पर ही दासों का दास है।
'धर्मवीर' जीवन फिर शेष कुछ रहता नहीं,
ना जीवन के सुधरने की रहती कुछ आस है॥

* कवित्त नं०—६७ *

अच्छे खानदान से जोन्या क ब्याह करके लावे,
सदा सुखी रहें कभी कष्ट नहीं पाते हैं।
सुन्दर ही सन्तान धनवान् गुणवान् होवें,
यश इतना फैले उनका सभी गुण गाते हैं॥
धर्म में हो रुचि सबकी सात्विक सब भोजन करें,
सौ वर्षों की आयु पाकर स्वर्ग लोक जाते हैं।
बिना मेल खेल फेल धर्मवीर आज होता,
तभी सारा जीवन सभी दुःखों में बिताते हैं॥

* कवित्त नं०—६८ *

प्रथम की जो चार रात उनका सदा त्यागन करे,
यदि उनमें जायेगा तो रोगी ही कहावेगा।
छटी हो या आठवीं हो दसवीं या फिर बारहवीं हो,
इन रातों में मिलन करे पुत्र को खिलावेगा॥
नियम के अनुसार चले उत्तम खान पान होवे,
सुन्दर हो सन्तान उसे रोगी नहीं पावेगा,
कन्या की हो चाह जिसे इसके विपरीत चले,
धर्मवीर बात सदा दोनों की बतावेगा॥

*** कवित्त नं०—९९ ***

चूल्हा और चक्की जहां नित्य प्रति चलते होवें,
ओखली में डाल-डाल धान की कुटाई हो।
पानी को उघाड़ा रखे झाड़ू नित्य लगाया करे,
कितने जीव जन्तुओं की रोज़ाना सफाई हो॥
इन पापों से बचने को ही पांच यज्ञ नित्य करे,
इन्हें करो तभी उन पांचों से रिहाई हो।
धर्मवीर मानव बनकर घर के घर तो रहना चहिये,
बुरा भी ना करो यदि तुमसे ना भलाई हो॥

*** कवित्त नं०—१०० ***

गुण को गुण माने नहीं गुण पर अवगुण करता रहे,
ऐसे नीच जन को कभी साथ में लगावे ना।
प्रातःकाल उठे नहीं दिन में कई बार सोवे,
जीवन के निर्वाह हेतु कुछ भी कमावे ना॥
पाप को जो पुण्य समझे नीचता के काम करे,
मैला इतना रहे कभी महीनों तक नहावे ना।
प्रेम की ना बात करे वैर भाव मानता है,
'धर्मी' ऐसे जन को कभी पास में सुलावे ना॥

*** कवित्त नं०—१०१ ***

उल्टी सीधी शंका करे 'धर्मी' पढ़ना छोड़ देवे,
छोड़ देवे पढ़ना वहां जहां झगड़ा होता है।

छोड़ देवे पढ़ना वहां जहां सेना जाती होवे,
छोड़ देवे पढ़ना वहां जहां कोई रोता है ॥
भोजन् के पश्चात् और अजीर्ण में पढ़े नहीं,
पढ़ो मत वहां जहां रोगी कोई सोता है।
वायु का प्रकोप होवे ऐसे समय पढ़े नहीं,
ऐसे समय पढ़ने वाला समय व्यर्थ खोता है ॥

*** कवित्त नं०—१०२ ***

अंग से जो हीन और अधिक अंग वाला होवे,
धर्मवीर उसे देख देखकर हरषावे ना।
मूर्ख मतिमन्द और बूढ़ा है महान् यदि,
रूप है कुरूप जिसका कुदृष्टि लखावे ना ॥
कंगाली है पास जिसके जाति से है हीन यदि,
उसे किसी रूप से भी ताना दे चिड़ावे ना।
ऐसे-ऐसे जन के साथ जो भी दुर्व्यवहार करे,
आगामी जो जीवन उसका अच्छा वो बनावे ना ॥

*** कवित्त नं०—१०३ ***

वेद का जो पांठ करे औरों को उपदेश करे,
ज्ञान की जो बातें जन जन को सिखाता है।
चाव के जो साथ बड़े प्यार से नित पालन करे,
ऐसा पूज्य पिता और ऐसी पूज्य माता है ॥
ज्ञान के जो देने वाला ब्रह्म को जो जानता है,

गाय माता सब भाँति से भवसागर की त्राता है।
धर्मवीर इनके साथ यदि दुर्व्यवहार करे,
निश्चय जानो एसा जन नर्क धाम पाता है॥

*** कवित्त नं०—१०४ ***

मूर्ख, दान सुवर्ण, भूमि, घोड़ा, गाय, वस्त्र लेकर,
अन्न, तिल, घृत लेकर नाश निज कराता है।
सुवर्ण और अन्न से तो आयु दिन-२ थोड़ी होती,
भूमि और गाय से शरीर को जलाता है॥
अश्व से जां आँख और वस्त्र से शरीर जाय,
घृत घना सेवन करे तेज को मिटाता है।
'धर्मी' ना प्रयोग तिल का ठीक-ठीक करने पावे,
जिसके कारण थोड़े दिन में नपुंसक बन जाता है॥

*** कवित्त नं०—१०५ ***

मानव है अशुद्ध सारा शुद्ध होता ज्ञान द्वारा,
तप और त्याग से भी शुद्ध कहा जाता है।
अग्नि से भी शुद्ध होता मृतिका आहार से भी,
गोबर से भी शुद्ध होता लीपना कराता है॥
मन और वाणी से भी वायु और यज्ञ से भी,
सूर्य से शुद्धि होती सन्मुख जब तपाता है।
धर्मवीर अर्थ का भी सदा अपने ध्यान करो,
शुद्ध अर्थ होता वो ही धर्म द्वारा आता है॥

* (३३ देव) कवित्त नं०—१०६ *

आठ वसु ग्यारह रुद्र बारह हैं आदित्य मास,
'धर्मी' यज्ञ, इन्द्र तेतीस देवता कहाते हैं।
सूरज, चन्द्र, तारे, अग्नि, जल, वायु, भूमि, नभ,
वसु हैं ये क्योंकि इनमें प्राणी बसे पाते हैं॥
दस भाँति के प्राण और ग्यारहवाँ है जीव साथ,
रुद्र इन्हें कहें क्योंकि सबको ये रुलाते हैं।
बारह मास ही में सबका सारा जीवन बीत जाय,
यज्ञ, इन्द्र जीवन देते देव न्यूं बताते हैं॥

* कवित्त नं०—१०७ *

पृथ्वी के धारने में गऊ मात श्रेष्ठ सब से,
ब्रह्म को जो जाने दूजा ब्राह्मण वो कहाता है।
तीजे प्रभु वाणी जिसे सभी वेद ज्ञान कहें,
चौथा है निर्लोभी जिसे लोभ नहीं आता है॥
पांचवीं पतिव्रता नारी पति को आधार माने,
छटा सत्यवादी प्राण सत्य पै गँवाता है।
सातवाँ है दान वीर जे नित्य प्रति दान करे,
'धर्मवीर' लेख कहीं लिखा ऐसा पाता है॥

* कवित्त नं०—१०८ *

शब्द, रूप, रस, गन्ध, छूना भी तन्मात्रा है,
जिनके हैं ये विषय 'धर्मी' आगे हम बताते हैं।

कान, नाक, चक्षु, जिह्वा पाँचवीं है तन की चमड़ी,
इन्हीं ज्ञान इन्द्रियों से ज्ञान कर पाते हैं।
वाक्, पाणि, पाद, पायु पांचवीं उपस्थ इन्द्रिय,
इनके द्वारा कर्म करके सुख दुख उठाते हैं।
अग्नि, जल, आकाश, वायु पाँचवाँ है पृथ्वी तत्त्व,
जिनसे जलचर थलचर नभचर सारे बन जाते हैं॥

* कवित्त नं०—१०९ *

आर्यों का दस्युओं से मेल कभी होता नहीं,
गज और गधा को भी साथ में चलावे को।
गाय और बाघ में भी प्यार कहीं पाता नहीं,
काग और हंस को भी एकसा बतावे को॥
जहाँ हो प्रकाश वहाँ अन्धकार होता नहीं,
जहाँ रुदन होता वहाँ राग को सुनावे को।
साँप और न्यौला कहीं एक बिल में रहते नहीं,
आग और पानी 'धर्मी' घड़े में धरावे को॥

* (१६ पदार्थ) कवित्त नं०—११० *

सोलह हैं पदार्थ 'धर्मी' जिन्हें प्राप्त कर लेने पर,
बन्धनों से छूट करके मोक्ष पद पाता है।
प्रथम है प्रमाण, संशय, प्रयोजन, प्रमेह चौथा,
तर्क व सिद्धान्त, अवयव, सातवां कहाता है॥
आठवां दृष्टान्त, निर्णय नौवां, दसवां, जल्प जानो,

ग्यारहवां वितण्डा आगे वाद माना जाता है।
तेरहवाँ है हेत्वाभास, छल जाति पन्द्रवाँ है,
सोलहवाँ स्थान निग्रह सब से पीछे आता है ॥

* कवित्त नं०—१११ *

तीन हैं अनुमान जिनके द्वारा सब कुछ जान लेते,
जैसा जैसा होता उसे प्रथम ही बताते हैं।
पूर्ववत् अनुमान है यह धूम को जहां देख लिया,
निश्चित जान अग्नि वहाँ धूम जहां लखाते हैं ॥
बादलों से वर्षा और दम्पत्ति से बच्चों का हो,
ऐसे जो अनुमान वही शेषवत् कहाते हैं।
कार्य को देख करके कारण का जो ज्ञान होता,
सामान्यतो दृष्ट वो ही 'धर्मी' न्यू सुनाते हैं ॥

* कवित्त नं०—११२ *

परम पिता परमेश्वर का रूपों में कोई रूप नहीं,
इसीलिए नेत्र उसे देख नहीं पाता है।
भांति भांति गन्धों में से प्रभु कोई गन्ध नहीं,
इसीलिये नासिका से सूंघा नहीं जाता है ॥
रसों अन्दर रसों में से ईश्वर कोईरस भी नहीं,
इसीलिये रसना वाला स्वाद ना बताता है।
'धर्मवीर' इन्द्रियों के विषय से वह दूर ही है,
तब भी प्रातः सायं बैठ गीत उसके गाता है ॥

* (८–गुण) कवित्त नं०–११३ *

'धर्मवीर' अष्ट गुण हैं गुणों में जो उत्तम होते,
जो भी जन धारें वे ही आर्य कहाते हैं।
हृदय अन्दर शान्ति हो, सभी जन की सहन करे,
विषयों अन्दर इधर उधर मन ना डुलाते हैं।
आपत्ति अनेक सहें सत्य का ना त्यागन करें,
इन्द्रियों को जीत सुख मानवता का पाते हैं।
दुखियों पे दया और दीनों को जो दान करें,
नम्रता का नियम सारे जीवन भर निभाते हैं॥

* कवित्त नं०–११४ *

सुख दुख देने वाला दूसरा न जग में कोई,
दूसरे दुख देते हमें मूढ़ जन कहते हैं।
ऐसा किया वैसा किया, जो कुछ किया मैंने किया,
ऐसे भाव सभी झूठे अभिमानी में रहते हैं॥
जैसे जैसे कर्म करें वैसे वैसे भोग भोगें,
औरों को जो दुख देते, दुख सदा सहते हैं।
'धर्मवीर' कर्म के हैं करने में स्वतन्त्र जीव,
भले जन जो होते कभी कुमार्ग ना गहते हैं॥

* कवित्त नं०–११५ *

नौ भांति के विघ्न हैं जो योगी के विपरीत होते,
जिसके कारण ध्यान अपना लगा नहीं पाते हैं।

व्याधि व स्त्यान दूजा, तीजा संशय विघ्न होता,
आलस्य प्रमाद जिन्हें आ करके सताते हैं ॥
विषयों में हो प्रीत उसका नाम अविरति कहें,
उल्टा ज्ञान भ्रान्तिदर्शन सभी जन बताते हैं ।
अष्टम अनवस्थित्व नौवां अलब्धभूमिकत्व जानो,
जिनको 'धर्मी' विघ्न ये हों ध्यान ना लगाते हैं ॥

* कवित्त नं०—११६ *

जल, वायु, आकाश, पृथ्वी पांचवां है अग्नि देव,
इन पांचों का नाम सभी भूत ही बताते हैं ।
रूप, रस, गन्ध, शब्द पांचवां स्पर्श भूत,
पांच हैं स्थूल, पांच सूक्ष्म कहाते हैं ॥
वाक्, पाणि, पाद, गुदा, पांचवीं उपस्थ इन्द्रिय,
छटी इन्द्रिय श्रोत्र सप्तम त्वक् को गिनाते हैं ।
रसना, चक्षु घ्राण, बुद्धि बारहवीं है अहंकार,
तेरहवीं है 'धर्मी' मन गायक सभी गाते हैं ॥

* कवित्त नं०—११७ *

योगी जो महान् होते जल के ऊपर बैठ जाते,
पक्षियों की भांति नभ में चक्कर लगाते हैं ।
एक जगह बैठे बैठे दुनिया भर की बात कहें,
बीते हुए जन्मों की भी सब बातें बताते हैं ॥
जो भी बात ठीक ठीक समझ में जब आती नहीं,

समाधि के द्वारा पता ईश्वर से लगाते हैं।
'धर्मवीर' हर प्राणी को अपना जैसा समझते हैं,
इसीलिए सभी प्राणि पास उनके आते हैं॥

* कवित्त नं०—११८ *

कर्म हैं अनेक 'धर्मी' जिन्हें जीव करते रहते,
यौनि भी अनेक उसकी जिनमें जीव जाते हैं।
औरों की जो वस्तु सदा कुदृष्टि से देखते हैं,
आगामी जो जन्म होता आँख नहीं पाते हैं॥
हाथों से ना दान किया, दीनों को सताया नित,
बिना कर की योनि में जा जीवन सब बिताते हैं।
जैसा करें वैसा भरें, ईश्वर का है न्याय ऐसा,
इसीलिए ऋषि मुनि गीत उसके गाते हैं॥

* कवित्त नं०—११९ *

जिस भांति से एक जैसा बहुत समय बैठ सकें,
'धर्मवीर' उसका नाम आसन ही कहायेगा।
दण्ड, सर्प, क्रौंच, हस्ति, उष्ट्र आदि अनेकों हैं,
जिसका फल जो भी होता, उसी को वह पावेगा।
सिद्ध आसन, पद्म आसन, वीर भद्र, स्वास्तिक भी है,
साधना में योगी सदा इनको ही लगावेगा।
इन पांचों में सिद्ध आसन सब से उत्तम माना जाय,
जिस से पूछो वो ही तुम्हें इसी को बतावेगा॥

* धर्मी के दोहे *

१–धनी वैद्य पंडित नहीं ना रक्षक ना नीर।
'धर्मी' जन कैसे रहें, अपनी बना कुटीर॥

२–लज्जा भय जिसमें नहीं, उसका कैसा संग।
'धर्मी' जो संग में रहें, आठ पहर हो जंग॥

३–पांच वर्ष तक प्यार कर, पन्द्रह तक फटकार।
'धर्मी' आगे मित्र सम, करो पुत्र से प्यार॥

४–गाने में जन तीन हों, देशाटन में चार।
खेती में जन पांच हों, रण में बेशुम्मार॥

५–क्रोधमुखी हो भार्या, गुरु हो विद्याहीन।
प्रेम रहित भाई मिलें, 'धर्मी' तजें प्रवीण॥

६–मनुष्य चले घोड़ा बंधे, कपड़ा खूब सुखाय।
बिन पति 'धर्मी' भार्या, शीघ्र बुढ़ापा आय॥

७–विद्या आलस से मिटे, धन दूजे के हाथ।
'धर्मी' नायक के बिना, सेना मारी जात॥

८–दुःख नहीं है काम सम, बैरी मोह समान।
पावक ना है क्रोध सम, 'धर्मी' सुख सम ज्ञान॥

९–बाहर विद्या मित्र है, घर में नारी जान।
'धर्मी' मर कर धर्म ही, होता मित्र महान्॥

१०–मनुजों में नाई चतुर, पक्षिण में हो काक।
त्रियों में मालिन चतुर, घर-घर बेचे शाक॥

११–घोड़ा रख दस हाथ पर, हाथी हस्त हजार।
दुर्जन संग से दूर कर, पावे सुक्ख अपार॥
१२–ब्राह्मण भोजन पायकर, बादल पाय मयूर।
साधु सुखिया देखकर, सुख में हो भरपूर॥
१३–पिछले खोटे कर्म से, सत्संगत ना भाय।
'धर्मी' ज्वर का जन कभी हलवा खीर न खाय॥
१४–जन कुसंग में जाय कर, डूबत है मझधार।
सत्संगत से होत है, 'धर्मी बेड़ा पार॥
१५–गुरु वन्दना ना करे, चलता चाल कुचाल।
शत योनि पा श्वान की, बने फेर चण्डाल॥
१६–उत्तम चाहे मान को, मध्यम धन अरु मान।
अधम मनुष्य नित चाहता मिले कनक की खान॥
१७–असन्तुष्ट ब्राह्मण मिटे, सन्तोषी जो भूप।
लज्जा से गनका मिटे, बिना चलाये कूप॥
१८–'धर्मी' जो संसार में, चाहत है सुख चैन।
दीनों की रक्षा करे, ईश भजे दिन रैन॥
१९–करें मित्र से द्वेष जो, शत्रु के संग प्यार।
खोटे मार्ग से चलें, वे हैं मूंढ़ गंवार॥
२०–मूर्ख की करें चाह जो, विद्वानों का त्याग।
बैर करें बलवान् से, 'धर्मी' खोटे भाग॥

२१–बिना बुलाये आय घर, बिना कहे कह बात।
उस मूर्ख को भूलकर, 'धर्मी' करो न साथ॥
२२–निर्धन हो दाता बने, क्षमा युक्त बलवान्।
'धर्मी' सुख ही भोगते, दोनों स्वर्ग समान॥
२३–निर्धन हो निशदिन करे, गज-घोड़े की आस।
निर्बल करता क्रोध को, हो दोनों का नाश॥
२४–धनी दान करता नहीं, निर्धन लेट लगाय।
'धर्मी' ऐसे ढूंड कर, जल में देय डुबाय॥
२५–पर धन पर नारी तके, करे मित्र से रार।
'धर्मी' जीवन में सदा, पाये कष्ट अपार॥
२६–ब्याह, मित्रता जो करे, सम वालों के साथ।
'धर्मी' जीवन में कभी, ना वह जन पछतात॥
२७–इष्टमित्र, परिवार में, बांट बांट जो खाय।
'धर्मी' अपयश पास में, ऐसे के ना आय॥
२८–'धर्मी' ऊसर भूमि हो, जा नृप हो चण्डाल।
ज्यूं पावक में चाम का, देखा होगा हाल॥
२९–पर धन लख बल रूप को, जो जन करता शोग।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य का, है असाध्य वह रोग॥
३०–बाणों का जो घाव है, कुछ दिन में भर जाय।
वाणी का जो घाव है, 'धर्मी' भरता नाय॥

३१–अधर्म होता देखकर, बैठ जाय चुपचाप ।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य को, अधिक लगत है पाप ॥
३२–पर निन्दा करता नहीं, चतुर, शील, गुणवान् ।
'धर्मी' वह सर्वत्र ही, पाता सौख्य महान् ॥
३३–दिन में पूरा काम कर, निश में सुख से सोय ।
दीनों का उपकार कर, तब ही 'धर्मी' होय ॥
३४–ब्राह्मण त्रिया गाय पर, जो बनते हैं शूर ।
'धर्मी' ऐसे जनन के, मुख में पड़ती धूर ॥
३५–मीठे बोलें बोल जो, ऐसे बहु मिल जांय ।
कड़वा हितकारी बने, 'धर्मी' कोई नांय ॥
३६–सम आयु धनवान् सम-सम हो कुल की रीत ।
दोनों रहते प्रेम से सम्बन्धी अरु मीत ॥
३७–जिस जन ने जाना नहीं, कैसा होता गान ।
'धर्मी' वह जन जानिये, जग में पशु समान ॥
३८–बन में बसना है भला, वन वासी के पास ।
इन्द्र भवन में मूर्ख संग, मत कर 'धर्मी' वास ॥
३९–मरना उसका ठीक है, जिससे कुल बदनाम ।
'धर्मी' वह जीवित रहे, करता जो शुभ काम ॥
४०–स्वाभिमानी जगत् में, या तो पावे मान ।
वरना वन में जाय कर, करे निजी रहठान ॥

४१–सिंह शिशु तज स्यार को, करता गज पर वार ।
वीर लड़े संग वीर के, जीत होय या हार ॥

४२–तीन दशा धन की कहें, भोग, दान, अरु नाश ।
खावे और खर्चे नहीं, 'धर्मी' होत निराश ॥

४३–'धर्मी' जन का जिस जगह, होता होय अलाप ।
मूर्ख का भूषण यही, बैठ जाय चुपचाप ॥

४४–विद्या से भूषित चहे, तज दुर्जन का संग ।
मणियों वाला होत क्या, 'धर्मी' भला भुजंग ॥

४५–क्रोधी जन को जगत् में, अपना जन ना पाय ।
पावक का अपना नहीं, सबको देत जलाय ॥

४६–मीना, सज्जन, मृग कहीं करते नहीं उपाध ।
उनके भी वैरी बने, धीवर, दुर्जन, व्याध ॥

४७–सम्पत्ति में सन्त का, चित्त हो कमल समान ।
आपत्ति में चित्त वह, बन जाता पाषाण ॥

४८–सज्जन की सेवा करो, सुनो सदा उपदेश ।
तिसका फल 'धर्मी' मिले, सबको सुख विशेष ॥

४९–कमल लाल ही होत है, पर उपकारी सन्त ।
दुष्ट दया से दूर हो, चाहे बिगड़ो अन्त ॥

५०–ब्राह्मण का भूषण क्षमा, वाणी का प्रिय बोल ।
जन का भूषण शील है, 'धर्मी' कहीं पर डोल ॥

५१–करने से पहले सदा, पंडित करे विचार ।
बिना विचारे जो करे, पावे कष्ट अपार ॥

५२–दुष्ट जनों की मित्रता, दिन-दिन घटती जाय ।
'धर्मी' जन की मित्रता, दिन-दिन होत सवाय ॥

५३–देह वही बुद्धि वही, वही बोल वही चाल ।
'धर्मवीर' धन के बिना, लोग उड़ावें ताल ॥

५४–'धर्मी' धन हित ना चले, कभी कुमार्ग ओर ।
हाथी रोका ना रुके बांध कमल की डोर ॥

५५–कोस-कोस पर धोय पग, तीन कोस पै खाय ।
'धर्मी' जन थकता नहीं, तीस कोस चहे जाय ॥

५६–बिना समय भोजन शयन, आठ पहर उत्पात ।
'धर्मी' निश्चय जानिये, दुख से भरी बरात ॥

५७–शत्रु शेर अरु सांप को, मतना छोटा जान ।
अग्नि रोग का शीघ्र ही, 'धर्मी' करो निदान ॥

५८–'धर्मी' जन देते नहीं, मांगी वस्तु चार ।
प्यारी पुस्तक नार निज, घोड़ी और कटार ॥

५९–'धर्मी' जैसे झील में, नीर स्वयं ही जाय ।
भले जनों के पास में, तैसे ही गुण आय ॥

६०–जिस राजा के राज में, जनता दुखी अपार ।
'धर्मी' ऐसा भूप जो, जाय नरक के द्वार ॥

६१–सम्पत्ति का वास हो, रहत जहां पर मेल ।
जहां कुमति का वास हो, बिगड़ जाय सब खेल ॥

६२–दिन आवें जब नाश के, करें नित्य तकरार ।
धर्म छोड़ अधर्म करें, करें गैर से प्यार ॥

६३–ओ३म् नाम का जाप कर, व्यर्थ समय मत खोय ।
उस दिन तू पछतायेगा, जिस दिन जाना होय ॥

६४–'धर्मी' जन जाते नहीं, नहीं जहां सत्कार ।
चाहे कञ्चन का मिले, भरा हुआ भण्डार ॥

६५–'धर्मी' कवियों का रहा, ऐसा सदा विचार ।
नकद भले नौ हैं बुरे, जो सौ मिलें उदार ॥

६६–गुणी जनों के पास में, गुण-गुण ही कहलाय ।
बिना गुणी के पास में गुण अवगुण बन जाय ॥

६७–धन बल आयु से नहीं, कोई बड़ा कहाय ।
करे आचरण वेद का, वही बड़प्पन पाय ॥

६८–भौंरा बछड़ा जौंक ज्यूं, करे खान अरु पान ।
त्यूं प्रजा से लेय कर, वो ही भूप महान् ॥

६९–अधर्म का धन, धन नहीं, 'धर्मी' उसको त्याग ।
धर्म छोड़ धन लेत जो, वह जन है निर्भाग ॥

७०–विद्या के सम नैन ना, तप ना सत्य समान ।
दुःख नहीं है राग सम, त्याग सुख त्यूं जान ॥

७१–अपने स्वार्थ के लिये, करे और की हान ।
'धर्मी' ऐसे मनुज का, मिट जा नाम निशान ॥

७२–बिन स्वार्थ के नित्य ही, करे और की हान ।
कूकर शूकर योनि में, 'धर्मी' करे पयान ॥

७३–'धर्मी' जो जन जगत् में, आपा लेत सुधार ।
उस जन को फिर दीखता, सुधरा सब संसार ॥

७४–जिसके हृदय हर घड़ी, बसे एक ओंकार ।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य को, मिले मोक्ष का द्वार ॥

७५–'धर्मी' जो तू चाहता, जीवन का कुछ स्वाद ।
मृत्यु अरु भगवान् को, राख हमेशा याद ॥

७६–जो चाहक आनन्द का, सुख में धक्का देत ।
दुख में 'धर्मी' हर घड़ी, नाम ईश का लेत ॥

७७–'धर्मी' जो संसार में, चाहत है उत्थान ।
देना जीवन जानिये, मांगन मरण समान ॥

७८–धन, रम्भा मणि, वारुणी, अमी, शंख,धनु,बाज ।
कल्पवृक्ष, धन्वन्तरि, गौ, गज, विष, निशराज ॥

७९–लकीर गिन तरबूज की, अस्सी गुणा बढ़ाय ।
जितनी संख्या आय जा, उतने बीज बताय ॥

८०–'धर्मी' जो जन भी करे, काम वेद अनुसार ।
जग में पावे कीर्ति, जाय मोक्ष के द्वार ॥

८१–जहां बैठता वेद की, निन्दा करता नीच।
'धर्मी' जन ठुकराय दे, पड़े नरक के बीच॥

८२–जो जन पूछे कपट से, उत्तर कभी ना देय।
मूढ मनुज के सामने, मौन व्रत कर लेय॥

८३–मात पिता, आचार्य, चौथा अतिथि जान।
देव समझ कर पूजिये, हो जावे कल्याण॥

८४–नीचे ऊपर देख चल, पानी पीजे छान।
वचन बोलिये सत्य ही, 'धर्मी' पावे मान॥

८५–जीव नपुन्सक नार ना, ना यह पुरुष महान्।
कर्म भोग के वास्ते, मिले देह सो जान॥

८६–अधर्म का धन रहत है, वर्ष तीन अरु सात।
'धर्मी' सोलह वर्ष तक, जड़ा मूल से जात॥

८७–ज्ञान हीन को वेद भी, ना कुछ मार्ग बताय।
नेत्र हीन ना लख सके, चश्मा चार लगाय॥

८८–जहां मूढ का मान ना, तहां लक्ष्मी आय।
पत्नी पति में प्रेम हो, धन से घर भर जाय॥

८९–अ,उ,म के मेल को, जो जन नित प्रति गाय।
'धर्मी' निश्चय जानिये, मोक्ष परम पद पाय॥

९०–जो जन जैसा करत है, वैसा ही फल पाय।
और किसी के भोग को, 'धर्मी' भोगे नाय॥

९१–लज्जा, शंका, भय नहीं, काम करत में आय।
'धर्मी' ऐसे काम को, नित्य करो हरषाय॥

९२–वेद शास्त्र का मनुष्य जो, करता है अपमान।
'धर्मी' उसको पास में, देते ना स्थान॥

९३–लोभी, कामी को नहीं, होय धर्म का ज्ञान।
धर्म प्राप्त में वेद ही, समझ परम प्रमाण॥

९४–जो द्विज तजकर वेद को, करे अन्य ही पाठ।
इसी जन्म में शूद्र हो, होजा बारह बाट॥

९५–माता, भगिनी, आत्मजा, मत रख इकली संग।
एक-एक संग जो रहे, बुरा होत है ढंग॥

९६–चार तीन दो एक जो, पढ़ले पूरा वेद।
तब विवाह अपना करे, कभी न होवे खेद॥

९७–गुरुकुल से बटु वेद पढ़, आवे अपने थान।
राजा उस घर जायकर, करे अधिक सम्मान॥

९८–सबसे उत्तम होत है, पर्वत ऊपर कोट।
शत्रु निष्फल होत है, कर सकता ना चोट॥

९९–कर्ज मर्ज रिपु आग विष, इनको समझ महान्।
'धर्मी' वह दुख पात है, करे ना इनका ध्यान॥

१००–'धर्मी' प्रातः शाम जो, करे ओ३म् का जाप।
निश्चय ही उस मनुष्य के, कटजां तीनों ताप॥

१०१–जिनके हृदय क्रोध, मद, लोभ, मोह अरु काम।
ऐसे जन की जगत् में, कीमत नहीं छदाम॥

१०२–विद्या, आयु, पुत्र, यश, धन और स्वस्थ शरीर।
'धर्मी' यह जिनको मिलें, पुण्यवान् कोई वीर॥

१०३–प्रेम, खुशी, खांसी, इतर, रक्त, मद्य अरु पान।
'धर्मी' ये छिपते नहीं, लेते सब ही जान॥

१०४–सुनने से वाणी कटु, करती हो कल्याण।
श्रोता वक्ता जगत् में, दोनों दुर्लभ जान॥

१०५–जो भी जन करता नहीं, संध्या प्रातः शाम।
शूद्र समझकर द्विज उसे, करें दूसरे धाम॥

१०६–भूप और विद्वान् की, तुलना नहीं समान।
राजा पुजता राज्य में, सभी ठौर विद्वान्॥

१०७–चोरी जारी नित करे, सज्जन अधिक सताय।
'धर्मी' ऐसा मनुष्य जो, वृक्ष योनि में जाय॥

१०८–जो राजा फंस मोह में, करता नहीं विचार।
ऐसे बुद्धू भूप की, होती मिट्टी ख्वार॥

१०९–नारी, ज्वारी, बाल जंह, शासन करता होय।
राज नष्ट निश्चय समझ, बचा सके ना कोय॥

११०–सज्जन का अपमान हो, दुर्जन का हो मान।
'धर्मी' ऐसे देश में, संकट पड़े महान्॥

१११–बालक, रोगी, हीजड़ा, लोभी मूर्ख साथ।
'धर्मी' मत कर मित्रता, वरना फिर पछतात॥

११२–चेचक, हैजा, प्लेग का, होता जानो जोर।
'धर्मी' तज उस धाम को, बसो दूसरी ठौर॥

११३–जिसकी वाणी मधुर हो, करे ईश का गान।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य का, करो सदा सम्मान॥

११४–दास न हो कंजूस का, मांग चहे कहीं भीख।
जीवन दुख में जायगा, कहते 'धर्मी' ठीक॥

११५–वह जन तरता शोक से, जिसको अपना ज्ञान।
हर्ष शोक से वह तरे, जो होता विद्वान्॥

११६–दुःखों से नहीं छूटता, जब तक नहीं विवेक।
बिना ज्ञान के जगत् में, पावे दुःख अनेक॥

११७–तेज, शील और गुप्तचर, शक्ति, मुक्ति अरु दान।
क्षमा प्रजा अरु मन्त्री, दसवां बल है ध्यान॥

११८–कल्प, छन्द अरु व्याकरण, शिक्षा ग्रन्थ महान्।
निरुक्त, ज्योतिष कंठ कर, मिले वेद का ज्ञान॥

११९–न्याय शास्त्र मीमांसा, योग सांख्य वेदान्त।
वैशेषिक का पाठ कर, होजा हृदय शान्त॥

१२०–हाथी, घोड़ा, बैल, ध्वज, दीपक, पंखा, ढोल।
सुवर्ण के हों कलश जंह, सबको मंगल बोल॥

१२१–सुवर्ण, चांदी, जस्त को, लोहा, तांबा, रांग ।
शीशा, पारा धातु कह, 'धर्मी' सबसे मांग ॥

१२२–भूमि, नीर, पावक, गगन, पञ्चम जानो व्यार ।
प्रकृति ही समझना, मन बुद्धि अहंकार ॥

१२३–मर जाना उसका भला, जो नित मांगे खाय ।
समय पड़े पर देश के, कभी काम ना आय ॥

१२४–गुणी मनुष्य निर्धन रहे, क्रोधी का हो नाश ।
रूपवती बिन पुत्र हो, कामी रहे उदास ॥

१२५–दुर्जन की प्रीति बुरी, भला भले का त्रास ।
ज्यूं गर्मी दे सूर्य, मेघ पड़न की आस ॥

१२६–जान बूझकर मत करो, कभी नीच का संग ।
कीचड़ में पग पड़न से, उछल बिगाड़े अंग ॥

१२७–फल मिलता है जीव को, कर्मों के अनुसार ।
कर्म करो 'धर्मी' सदा, करके सोच विचार ॥

१२८–भाग्यहीन जाता जहाँ, पावे कष्ट अपार ।
'धर्मी' जन सौभाग्य से, पावे सुख का सार ॥

१२९–अपने हित का काज जो, करो, करो चह टाल ।
'धर्मी' पर उपकार को, तभी करो तत्काल ॥

१३०–जन जन के जा सामने, मतना हाथ पसार ।
'धर्मी' उससे मांग तू, जो पूरा दातार ॥

१३१–अन्न, अभय, लज्जा जहां, जहां कुशलता त्याग ।
'धर्मी' ऐसे धाम को, छोड़ कहीं ना भाग ।।

१३२–शत्रु कुछ ना कर सके, खेल अनेकों खेल ।
किन्तु हो परिवार में सभी जनों में मेल ।।

१३३–जिसका मन सन्तुष्ट हो, सुखी रहे भरपूर ।
असन्तुष्ट 'धर्मी' सदा, सुख से रहता दूर ।।

१३४–शत्रु से करे मित्रता, रहे उसी के पास ।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य का, होय शीघ्र ही नाश ।।

१३५–सूझ बूझ और धैर्य, रहती देह निरोग ।
तीक्ष्ण बुद्धि पास हो, वह जन समझो योग ।।

१३६–पर स्त्री से प्यार हो, पर जन पर विश्वास ।
पर धन पर निर्वाह हो, उस जन का हो नाश ।।

१३७–बिन फल पक्षी वृक्ष को, देता 'धर्मी' छोड़ ।
ऊसर भूमि देखकर, मृग लेत मन मोड़ ।।

१३८–ऋक्, यजु और साम के, साथ लगाओ वेद ।
अथर्व वेद चौथा समझ, जिसमें सारे भेद ।।

१३९–सोने से प्रथम सदा, दोनों पग ले धोय ।
ऐसे जन को स्वप्न में, स्वप्न दोष ना होय ।।

१४०–प्रथम पति और पुत्र का, दूजा हो आधार ।
तीजा 'धर्मी' होत है, भला मिले परिवार ।।

१४१–मूढ़ मनुज मन में मगन, फूला देख पलाश ।
फल की आशा आस में, यक दिन होय उदास ॥

१४२–यदि गधा पर स्वप्न में, देखे कोई सवार ।
कुछ दिन में ही मनुष्य वह, जाता स्वर्ग सिधार ॥

१४३–आया है सो जायगा, गया हुआ फिर आय ।
जैसा जैसा करत है, वैसा वैसा पाय ॥

१४४–गधा कभी चलता नहीं, पवनपुत्र की चाल ।
राज सभी करते नहीं, बनो कोई भूपाल ॥

१४५–सत्य, मधुर भाषण, दया, अतिथि का सत्कार ।
जो जन भी अपनाएगा, जाय मोक्ष के द्वार ॥

१४६–कामी या धनहीन हो, या हो पति कठोर ।
पतिव्रता फिर भी नहीं, लखे किसी की ओर ॥

१४७–जनता से लेता रहे, छठा भाग जो भूप ।
पालन पोषण ना करे, पड़े नर्क के कूप ॥

१४८–पुत्र समझ पालन करे, प्रजा का जो भूप ।
ब्रह्म लोक में जायकर, मिले ब्रह्म का रूप ॥

१४९–जो जन साथी से सदा, लेता काम निकाल ।
साथी का ना साथ दे, वह जन हो चण्डाल ॥

१५०–कृपण, कपटी मनुष्य जो; करे गुरु से घात ।
निन्दा कर सकुचाय ना, जीवन भर दुख पात ॥

१५१–हस्ती, सिंह, सपूत जन, करें कहीं गुजरान ।
काागा, मृगा, मूढ़ जन, रहें एक स्थान ॥

१५२–दान्त, केश, नख मनुष्य से, अलग होंय बेकार ।
बल, धन, बुद्धिहीन से, करे न कोई प्यार ॥

१५३–खल का कहना और है, मन वाणी में और ।
'धर्मी' सब में एक है, बसो किसी जा ठौर ॥

१५४–जिस नारी में प्रेम ना, शत्रु चतुर सुजान ।
'धर्मी' मत विश्वास कर, वरना होगी हान ॥

१५५–मत दुर्जन से वैर कर, मत कर उससे प्रीत ।
सज्जन से सब कुछ करो, समझो अपनी जीत ॥

१५६–करते ना कहते फिरें, ऐसे मिलें अनेक ।
कहता भी करता रहे, ऐसा 'धर्मी' एक ॥

१५७–मान नहीं बन्धु नहीं, ना जीवन का साज ।
'धर्मी' ऐसे प्रान्त से, शीघ्र कहीं को भाज ॥

१५८–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में, ब्राह्मण गुरु महान् ।
ब्राह्मण का अतिथि गुरु, कर देता कल्याण ॥

१५९–मादक द्रव्य सेवन करें, जहाँ पुरुष अरु वाम ।
'धर्मी' उनके नष्ट हों, धर्म अर्थ अरु काम ॥

१६०–काम व्यसन जग तीन हैं, मिथ्या बात बनाय ।
बिना दोष हिंसा करे, पर नारी ढिग जाय ॥

१६१–युद्ध क्षेत्र में तप कहाँ, कहाँ दया कर नीर।
ये बातें अनमेल हैं, जैसे भीरु वीर॥

१६२–रहना हो परदेश में, पर घर में हो वास।
जीवन हो पर अन्न पै, क्या जीवन की आस॥

१६३–जिस जन ने 'धर्मी' लिया, आशाओं को जीत।
ईश्वर बिन फिर कौन है, उसका जग में मीत॥

१६४–शस्त्र शास्त्र की जगत् में, विद्या दो ही जान।
निर्बल का अपमान हो, दूजी से हो मान॥

१६५–जिसके सुत को जगत् में, ना जानत है कोय।
उस जननी से तो भली, बन्ध्या नारी होय॥

१६६–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब, शूद्र नीच अरु नार।
'धर्मी' पढ़कर वेद को, हों भवसागर पार॥

१६७–जैसे वटु पढ़ वेद को, करे विवाह स्वीकार।
तैसे कन्या वेद पढ़, चुन लेवे भरतार॥

१६८–प्राप्त वस्तु में ना रहे 'धर्मी' इतना प्यार।
बिना प्राप्त की वस्तु को, चाहत है सौ बार॥

१६९–खुश करने के वास्ते, मतना मुखड़ा खोल।
कड़वा हितकारी वचन, बोल सके तो बोल॥

१७०–दुराचार के कारणे, पास न आवे मान।
सदा रोग तन में रहें, जीवन दुख में जान॥

१७१–शीश श्वेत जब होत है, घर में रहे न कोय।
'धर्मी' घर को त्याग दे, जब सुत, सुत से होय॥

१७२–ब्रह्मचारी पूरा रहे, फेर गृहस्थ को धार।
वानप्रस्थ, संन्यास से, होजा भव से पार॥

१७३–शुक्रपतित जो पुरुष है, क्षतयोनि हो नार।
तीन वर्ण में होत ना, फेर विवाह संस्कार॥

१७४–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का, वेद परम प्रमाण।
दस से ज्यादा ना करे, कोई भी सन्तान॥

१७५–सोम और गन्धर्व है, तीजा अग्नि जान।
आगे जान तुरीय से, सब को मनुष्य बखान॥

१७६–वेद और सद्ग्रन्थ का करता जो अपमान।
पंक्ति से बाहर करो, करते मनु बयान॥

१७७–मात, पिता, विद्वान् की, जो भी सेवा ठाय।
विद्या आयु बल बढ़े, 'धर्मी' यश को पाय॥

१७८–'धर्मी' जो जन जगत् में, विद्या को ना पाय।
पढ़े लिखों में जायकर, मूढ़ मनुज कहलाय॥

१७९–हीरा मोती पायकर, ढोया फिर भी भार।
जीवन का जाना नहीं, उसने कुछ भी सार॥

१८०–'धर्मी' प्यारे ईश की, माया अपरम्पार।
पार कभी पाया नहीं, ऋषि मुनि गये हार॥

१८१–निज नारी को छोड़कर, तके और की नार।
'धर्मी' ऐसे मूढ़ पै, पड़े सभी की मार॥

१८२–सुख में कुछ करता नहीं, सोता चादर तान।
'धर्मी' ऐसा मूढ़ जो, पावे कष्ट महान्॥

१८३–अपनों का अपना नहीं, अपना नहीं सुहाय।
ऐसा जन 'धर्मी' सदा, मार गैर की खाय॥

१८४–सेवा में मेवा छुपी, जाने चतुर सुजान।
'धर्मी' जो सेवा करे, मिले स्वर्ग सोपान॥

१८५–रोग नष्ट हो जात है, 'धर्मी' औषध खाय।
भोग कभी टरता नहीं, करले लाख उपाय॥

१८६–मूढ़ मनुज माने नहीं, 'धर्मी' ले समझाय।
फल ना आवे बेत पै, करले लाख उपाय॥

१८७–गुणी मनुष्य गुण ढूंढता, जहाँ कहीं भी जाय।
दुर्जन अवगुण को लखे, ग्रहण करे हरषाय॥

१८८–'धर्मी' मतना मांग तू, आन कान घट जाय।
बिना मान के जगत् में, जीवन कुछ भी नाय॥

१८९–नित ही सद्उपदेश दे, दे विद्या का दान।
वह संन्यासी जगत् में, होता पूज्य महान्॥

१९०–वाणी तो अनमोल है, सोच समझ कर बोल।
बिन सोचे धर्मी कभी, मुखड़ा मतना खोल॥

१९१–वाणी से ही प्रेम हो, वाणी से ही वैर।
वाणी से अपना बने, वाणी से हो गैर।।

१९२–वाणी तीक्ष्ण तीर है, जिसका ऐसा घाव।
जीवन भर भरता नहीं, रंक होय या राव।।

१९३–'धर्मी' जब बन जात है, जिसकी जग में बात।
उसके साथी सैंकड़ों हो जाते हैं साथ।।

१९४–सुख में साथी सैंकड़ों, दुःख में ना हो एक।
'धर्मी' उसकी जगत् में, विधना राखे टेक।।

१९५–सोते उठते बैठते, करे ओ३म् का जाप।
'धर्मी' उसके शीघ्र ही, कट जां तीनों ताप।।

१९६–मात पिता विद्वान् की, जो भी सेवा ठाय।
बल बुद्धि अरु कीर्ति, तीनों को ही पाय।।

१९७–मन वाणी अरु कर्म से, जो जन जीव सताय।
'धर्मी' वो जन जगत् में सुख कभी ना पाय ।।

१९८–अवगुण तज गुण लेत हैं, जहां कहीं भी जाय।
गुणी जनों में जायकर, सबसे बड़ा कहाय।।

१९९–पूरा जब हो जात है, जिसको भी वैराग।
राज पाट परिवार को, देता 'धर्मी' त्याग।।

२००–गाय मृग पीपल नहीं, बड़ गूलर अरु आम।
'धर्मी' ऐसे प्रान्त में वर्षा को क्या काम।।

२०१–'धर्मी' हों जिस प्रान्त में, बड़ पीपल अरु नीम।
खोजे से पावें नहीं, डाक्टर वैद्य हकीम ॥

२०२–पानी पीकर शौच हो, नित्य नियम से नहाय।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य के, बवासीर ना पाय ॥

२०३–धन विद्या बल पायकर, करे नहीं अभिमान।
ऐसा 'धर्मी' जगत् में, कोई पुरुष महान् ॥

२०४–स्वामी के जीते हुए, व्रत करे जो नार।
स्वामी की आयु हरे, जाय नरक के द्वार ॥

२०५–सुन्दर साजन सांवरो, सुन्दर सकल समाज।
सुन्दर सुवर्ण सदन सब, सुन्दर सारा साज ॥

२०६–सब साधन सौभाग्य से, सुन्दर सदन सुदेश।
सुता सुनारी सौम्य सुत, सुवर्ण सुरस सुवेष ॥

२०७–सुख में साथी सैंकड़ों, सज्जन सन्त सुजान।
साला सासू, ससुर, सुत, सखा सुता सुलतान ॥

२०८–मात पिता का पुत्र जो, करे सदा सम्मान।
ऐसा सुत संसार में, पावे सुख महान् ॥

२०९–मात पिता स्वामी गुरु, ये हैं पूज्य अपार।
जो इनकी सेवा करे, जाय स्वर्ग के द्वार ॥

२१० जब तक जीव शरीर में, सुन्दर लगे शरीर।
साधु सुखिया है वही, हरे और की पीर ॥

२११–भक्ति ना भगवान् की, अनुचित भोगें भोग।
धोखा दे संसार को, कैसा जप तप योग ।।

२१२–वैर भाव छुपता नहीं, कर लो यतन हजार।
'धर्मी' इसको कहत हैं, बिना तार का तार ।।

२१३–सेवक को सुख होत ना, भिक्षुक को ना मान।
लोभी को ना यश कहीं, व्यसनी को धनखान ।।

२१४–अन्न होय अरु दूध हो, हो पतिव्रता नार।
सुन्दर सुत अनुकूल हो, होवे सुक्ख अपार ।।

२१५–शत्रु से वो बर्तते, साम दाम भय भेद।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य को, ना होता कुछ खेद ।।

२१६–दैहिक दैविक ताप दो, भौतिक तीजा ताप।
इनसे बचना चाहता, करे ईश का जाप ।।

२१७–जिसके सर पर होत है, मृत्यु आन सवार।
'धर्मी' बुद्धि नष्ट हो, रहता नहीं विचार ।।

२१८–ब्राह्मण जाने ईश वह, नहीं मान की चाह।
नित्य नया अपमान हो, कभी करे ना आह ।।

२१९–मात पिता अरु वृद्ध की, सेवा को जो त्यार।
बल विद्या अरु कीर्ति, आयु बढ़े अपार ।।

२२०–जो जन तजकर वेद को, आल्हा ढोला गाय।
पुत्र सहित संसार में, अधो गति को पाय ।।

२२१–काम क्रोध मद लोभ का, जिनके घट ना वास।
ऐसा जन ना जगत् में, बने किसी का दास ॥

२२२–नहीं मनुष की आस कुछ, करे ईश की आस।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य का, होय स्वर्ग में वास ॥

२२३–मेल कभी करता नहीं, बीज बदी के बोय।
'धर्मी' ऐसा मूढ़ जन मूंड पकड़कर रोय ॥

२२४–काम वेग में रत रहे, चाहे धन की खान।
ऐसे जन को धर्म का, होता ना कुछ ज्ञान ॥

२२५–गायत्री का जो करे, मन ही मन में जाप।
'धर्मी' निश्चय जानिये, कटजां तीनों ताप ॥

२२६–नाक कर्ण जिह्वा त्वचा, नेत्र पांचवां जान।
ज्ञान इन्द्रियां हैं यही, जिनसे होता ज्ञान ॥

२२७–हस्त और वाणी गुदा, लिंग पाँचवां पाद।
कर्म इन्द्रियां हैं यही, करलो इनको याद ॥

२२८–कपटी शत्रु चोर से, और पराई नार।
'धर्मी' मतना मेल कर, होजा जीवन ख्वार ॥

२२९–जिस घर में ना होत है, स्त्री का सत्कार।
उस घर के सब पुरुष ही, जांय नरक के द्वार ॥

२३०–जिस कुल में नारी सदा, कष्ट अनेकों पाय।
ऐसा कुल निश्चय समझ, नष्ट शीघ्र हो जाय ॥

२३१–भूषण, सुन्दर वस्त्र से, करें जहां श्रृंगार।
खान पान सन्तान से, सुखी रहे परिवार ॥

२३२–'धर्मी' झूठे हाथ से, सर को नहीं खुजाय।
प्रथम जल से शीश धो, जब जब भी जो नहाय ॥

२३३–जिन में विद्या शीलता, नहीं धर्म तप दान।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य तो, होते पशु समान ॥

२३४–बाहर मल अरु मूत्र कर, पग भी बाहर धोय।
घर में नित ही यज्ञ कर, रोग कभी ना होय ॥

२३५–जिस मार्ग से हैं चले, जिनके पितु और मात।
उस मार्ग से वे चलें, नहीं बुराई आत ॥

२३६–मूर्ख लेकर दान को, करे नहीं उपकार।
दोनों जाते नर्क में, जो मूर्ख दातार ॥

२३७–अन्न, गाय, भूमि, तिलो, हो सुवर्ण का दान।
इनमें सबसे श्रेष्ठ है, विद्या दान महान् ॥

२३८–नीच मनुष्य जिस राज्य में, करने वाला न्याय।
'धर्मी' निश्चय जानिये, जनता सुख ना पाय ।

२३९–नियम जहां रहता नहीं, बिगड़े शुद्ध समाज।
नष्ट शीघ्र ही होत है, उस राजा का राज ॥

२४०–शूद्र करे सेवा सदा, छोड़ देय अभिमान।
'धर्मी' निश्चय जानिये, करता स्वर्ग पयान ॥

२४१–दान दक्षिणा दे धनी, जिससे हो गुजरान ।
तभी वेद का पाठ हो, हों पूरे विद्वान् ॥

२४२–ब्राह्मण ब्राह्मण हैं नहीं, ठोकें सूभी ताल ।
वेद कभी पढ़ते नहीं, व्यर्थ बजावें गाल ॥

२४३–जीवन के निर्वाह हित, चलते चाल कुचाल ।
'धर्मी' यह ही धर्म है, मिले कहीं से माल ॥

२४४–मद में चकनाचूर है, मनमाना इतरात ।
पाप कर्म करता रहे, दिन हो या प्रभात ॥

२४५–जीवन थोड़ा है अभी, आगा पीछा देख ।
कभी मिटाया न मिटे, विधना का जो लेख ॥

२४६–सब जानें होता नहीं, कव्वा गरुड़ समान ।
कामधेनु सम खर नहीं, करा नित्य स्नान ॥

२४७–सुन्दर मुख वाणि मधुर, गल सोने का हार ।
बिना वस्त्र पाती नहीं, शोभा कोई नार ॥

२४८–शिष्य, पुत्र, लघु भ्रात को, समझें एक समान ।
शिक्षक, भ्राता पित्र जो, होते पूज्य महान् ॥

२४९–भले जनों के साथ में, करे जो खींचा तान ।
'धर्मी' ऐसी नार के, काट नाक अरु कान ॥

२५०–हल, कैंची और दुष्ट जन, करते सदा बिगाड़ ।
सज्जन, सूई, [illegible], बिगड़े देत सुधार ॥

२५१–मदिरा वाली हाट पै, दूध मद्य कहलाय।
मिश्री के संग बाँस भी, उसी भाव बिक जाय॥

२५२–ऊंच, नीच के संग में, नीचा ही हो जाय।
नीच, ऊंच के साथ में ऊंचे पद को पाय॥

२५३–संग में मूर्ख मित्र हो, घर हो दुष्टा नार।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य का, होता जीवन ख्वार॥

२५४–विषधर डसले ना मरे, उसका है उपचार।
त्रिया डसले ना बचे, करले यतन हजार॥

२५५–सिंह पछाड़न बहु मिलें कर दें चकना चूर।
कामदेव को मारदे, मिलता कोई शूर॥

२५६–सुवर्ण की इच्छा करें, कवि, चोर अरु जार।
पद पद पर शंका करें, लखते बारम्बार॥

२५७–भला भया जो पी मरा, मैं हो जाती रांड।
ताना देतीं सब सखी, ताल उड़ाते भांड॥

२५८–ऐसी कोई वाटिका, माली देय लगाय।
लोग सभी अच्छी कहें, वह लगने ना पाय॥

२५९–ऐसा कोई ना मिला, धनी, वीर, भूपाल।
सुख में जीवन बीतता, आया ना हो काल॥

२६०–चलते उठते बैठते, ईश्वर के गुण गाय।
'धर्मी' ऐसा मनुष जो, बन्धन से छूट जाय॥

२६१–जिसके मन में ना बसें, राग, द्वेष अरु लोभ ।
'धर्मी' ऐसे मनुष्य को, कभी न होता क्षोभ ॥

२६२–निर्धन को ही दान दे, जो चाहत कल्याण ।
धनवानों को दान दें, बढ़े उन्हें अभिमान ॥

२६३–वर्षा से तो अन्न हो, वर्षा यज्ञ से होय ।
यज्ञ सभी करते रहें, दुखी रहे ना कोय ॥

२६४–'धर्मी' धर्मी यज्ञ कर, दिवस होय या रैन ।
यज्ञमय जीवन बना, तभी पड़ेगा चैन ॥

२६५–चित्त वृत्ति निरोध को, कहते हैं सब योग ।
योगी जन के देह में, ना रहता है रोग ॥

२६६–जब तक कोई जगत् में, भोगत है बहु भोग ।
तब तक उसके देह में, रहते अनगिन रोग ॥

२६७–भोगी को ही होत हैं, सदा रोग अरु सोग ।
'धर्मी' ऐसे मनुज की, हंसी उड़ावें लोग ॥

२६८–सात्विक वृत्ति शान्त है, राजस वृत्ति घोर ।
तामस वृत्ति मूढ़ है, दुख उपजे चहुँ ओर ॥

२६९–सच्चे सुख को भोगता, ईश्वर में जो लीन ।
जैसे गहरे नीर में, सुखी रहत है मीन ॥

२७०–वृत्ति पाकर क्लिष्ट को, भरता दुख का घूंट ।
जब पावे अक्लिष्ट को, बन्धन से जा छूट ॥

२७१–जीवन में होता नहीं, विषयों का जो दास ।
यम नियमों का नियम से, करे वही अभ्यास ।।

२७२–ईश छोड़ जड़ पूजते, वे हैं मूढ़ महान् ।
जड़ को जो ईश्वर कहें, वे उन से नादान ।।

२७३–पञ्च क्लेश विपाक से, जो रहता है दूर ।
ईश्वर उसका नाम है, सब जग में भरपूर

२७४–आसन की सिद्धि जिसे 'धर्मी' जब हो जाय ।
गर्मी, सर्दी, नैक भी, उसको नहीं सताय ।।

२७५–भीतर को जब श्वास ले, पूरक श्वास कहाय ।
रेचक उसको ही कहें, बाहर को जब आय ।।

२७६–इन्द्रियों पै होत है, 'धर्मी' जब अधिकार ।
ऐसी वृत्ति को कहें सब ही प्रत्याहार ।।

२७७–जिसमें 'धर्मी' होत है, अग्नि, बत्ती तेल ।
दीपक तब तक ही जले, जब तक इनका मेल ।।

२७८–कभी बैठकर ताश का, देखा होगा खेल ।
एका सन्मुख आयकर सारे हो जां फेल ।।

२७९–भोगी रोगी होत है, चेत सके तो चेत ।
जीवन का हो जायगा, ऊजड़ सारा खेत ।।

२८०–अधिकारी को दान दे, दाता वही कहाय ।
बिना पात्र के दान दे, दाता वह मिट जाय ।।

२८१–'धर्मी' वह जन ठीक ना, अंग अंग फड़काय।
जितनी करता बात वह, उतनी सैन चलाय॥

२८२–'धर्मी' जो विपरीत हैं, उनको लो अपनाय.।
उनमें अपनापन करो, चिन्ता निकट न आए॥

२८३–'धर्मी' ऐसे मनुष्य का निश्चय हो कल्याण।
सब से सद्व्यवहार हो, दे दीनों को दान॥

२८४–शुक्र छाई बादली, रहे शनिश्चर छाय।
रविवार की रात तक, बिन बरसे ना जाय॥

२८५–भेड़ बकरियां खेत के, मैंडे-मैंडे जाय।
वर्षा निश्चय जानिये, आठ पहर में आय॥

२८६–चिमनी का धुवां यदि, निकट भूमि के आय।
आठ पहर में बादरा, सब नभ में छा जाय॥

२८७–चलते में नारी यदि, सीधा पग कम ठाय।
'धर्मी' ऐसी नार जो, सुत को गोद खिलाय॥

२८८–वर्षा ऋतु 'धर्मी' चलो, कुच्चा मारग छोड़।
पक्के पथ ही चालिये, चाहे सौ हों मोड़॥

२८९–जीवन भर ही रहत है, 'धर्मी' दुखी महान।
अन्धे, गन्जे, मूंढ़ हों, जिनकी सब सन्तान॥

२९०–ना ब्यावे ना दूध दे, ऐसी हो घर गाय।
पुत्र मूर्ख सेवक नहीं, कैसे को सुख पाय॥

२९१–एक बार में मान ले, राजा का ऐलान ।
एक बार ही होत है, हर कन्या का दान ।।

२९२–घर सूना है सुत बिना, भाई बिन संसार ।
मूरख सूना ज्ञान बिन, धन बिन सब परिवार ।।

२९३–सूर्य लोक में चमकता, है जिसका प्रकाश ।
'धर्मी' ऐसे ब्रह्म का, क्यों ना बनता दास ।।

२९४–सूर्य चन्द्र तारे चले, सदा नियम अनुकूल ।
उस न्यामक को याद कर, 'धर्मी' मतना भूल ।।

२९५–'धर्मी' ऐसे कर्म कर, जन्म मनुष का पाय ।
मनुष बने फिर देव बन, ईश्वर से मिल जाय ।।

२९६–सब से सूक्ष्म शुद्ध है, है सबका आधार ।
उसको 'धर्मी' धार ले, हो जा भव से पार ।।

२९७–सब विषियों में जाय रूक, करे ईश आधार ।
तब ही 'धर्मी' जानिये, मिले मोक्ष का द्वार ।।

२९८–योगी जब अभ्यास से, होय इन्द्रिय जीत ।
तभी इन्द्रिय से रहित, होय इन्द्र का मीत ।।

२९९–'धर्मी' जब हो जाय तू, राग द्वेष से दूर ।
फिर तो निश्चय जानिये, मुक्ति मिले जरूर ।।

३००–हृदय के जब जायेंगे, जिसके बन्धन टूट ।
जन्म मरण से जायगा, 'धर्मी' उस दिन छूट ।।

३०१–योगी मरने का समय, पहिले लेते जान।
तभी सुषुम्णा मार्ग से अपना करे पयान॥

३०२–सेवा में मेवा छुपी, ले गुरूओं से ज्ञान।
ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त हो, पावे सुक्ख महान॥

३०३–वाणी से होता पता, मूरख या विद्वान।
ज्ञानी को ही होत है, इसकी भी पहचान॥

३०४–चक्कर की टक्कर बुरी, चक्कर में चकराय।
वार पार निज गेह का 'धर्मी' पार न पाय॥

३०५–इच्छा करता पार की, पार कभी ना पाय।
यत्न पार का जो करे, परले पासे जाय॥

३०६–'धर्मी' उस से ब्याह कर, राखे कुल की लाज।
होय सुरूपा नीच कुल, जाय किसी संग भाज॥

३०७–कर नाखून सर सींग हों, जिस पै हो हथियार।
'धर्मी' इनका भूल कर, मत करना पतियार॥

३०८–हीरा कीचड़ में पड़ा, लीजो उसे निकार।
विद्या हो गर नीच पै, ले लो कर-कर प्यार॥

३०९–भोजन दुगना लाज में, रहे चौगुणी नार।
साहस छः अरु अठ गुणा, रहे काम का वार॥

३१०–पीछे काम बिगाड़ता, सन्मुख मीठी बात।
तज दे ऐसे मित्र को, वरना फिर पछतात॥

३११–शत्रु पर विश्वास है, करे मित्र से रार।
'धर्मी' ऐसे मूढ़ की, होती मिट्टी ख्वार॥

३१२–मूरखपन दुख देत है, ज्वानी भी दुख देत।
पर घर में 'धर्मी' बसे, मोल लड़ाई लेत॥

३१३–सब गज में मुक्ता नहीं, सन्त कहीं कहिं पात।
सब बन में चन्दन नहीं, ढूंड चहे दिन रात॥

३१४–पुत्र, शिष्य के साथ में, करो कटु व्यवहार।
दोनों का निश्चय तभी, 'धर्मी' होय सुधार॥

३१५–साथिन में अपमान हो, घर में ना हो नार।
निर्धनता घर में रहे, रहता जीवन ख्वार॥

३१६–निर्धन जन से लेत है, वेश्या मन को मोड़।
अतिथि भोजन पाय कर, देता घर को छोड़॥

३१७–विद्या गुरु से पाय कर, शिष्य देत है त्याग।
जले भुने बन से सभी, जाते हिरणा भाग॥

३१८–जो कोई भी रहत है, व्यभिचारी के पास।
'धर्मी' ऐसे मनुष का, शीघ्र होत है नाश॥

३१९–कौन सुखी रहता सदा, व्याधि में हो कौन।
कौन सदा उपदेश दे, कौन रहत है मौन॥

३२०–जीवन भर करते नहीं, कभी कोई उपकार।
'धर्मी' ऐसे मनुष का, जीवन है बेकार॥

३२१–मूरख का हो मान ना, वहाँ अन्न भरपूर।
दम्पत्ति में प्यार हो, कंगाली हो दूर॥

३२२–ब्रह्मचारी तो पुरुष हो, अक्षत योनि नार।
ऐसे रंडवा रांड का करो फेर संस्कार॥

३२३–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का, उत्तम यही विचार।
विवाह फेर करना नहीं, जो हो बच्चे दार॥

३२४–शूद्र वर्ण वाले करो, पुनः विवाह संस्कार।
फेर करो अरु फिर करो, करो चहे कई वार।

३२५–जिन-जिन में होते रहें, पुनर्विवाह संस्कार।
'धर्मी' उनमें देखलो, झगड़े होंय हजार॥

३२६–गुण कर्मों के मेल से, होय विवाह संस्कार।
'धर्मी' लक्ष्मी से वहाँ, भरा रहे भन्डार॥

३२७–सोलह की तो नार हो, सतरह का भरतार।
'धर्मी' क्या सुख पायेंगे, हो जा जीवन ख्वार॥

३२८–जिस घर में गाती रहें, नारी मंगलाचार।
'धर्मी' निश्चय जानिये, सुखी रहे परिवार॥

३२९–जिस नारी के नैन से, बहे अश्रु की धार।
'धर्मी' उस परिवार के, पावें कष्ट अपार॥

३३०–पति पत्नि में प्यार हो, यज्ञ करें दो वार।
सुन्दर सुत अरु स्वस्थ हों, ना होवे बीमार॥

३३१–जिस घर में नर नार का, करें सदा सत्कार।
देवों का परिवार हो, पूजे सब संसार ॥

३३२–सोलह साल की नार हो, पच्चिस का भरतार।
निश्चय वो ही पायेंगे, दानों सुख का सार ॥

३३३–जैसी सृष्टि थी कभी, वैसी ही फिर होय।
इस रचना के नियम को, बदल सके ना कोय ॥

३३४–आरम्भ जिसका है नहीं, अन्त न उसका होय।
बनकर के बिगड़ा नहीं, बता सके ना कोय ॥

३३५–राग, द्वेष, अरु भय क्षुधा, जिसको दुख सुख होय।
जन्म मरण भी देखते, ईश्वर कहो न कोय ॥

३३६–जीव करे जिस कर्म को, ईश्वर लेता जान।
ईश्वर जाने सो करे, 'धर्मी' यह भी मान ॥

३३७–जैसे अग्नि सार में कण-कण में बस जाय।
तैसे ईश्वर ज़ीव में, 'धर्मी' रहा समाय ॥

३३८–राज सभा, विद्या सभा, धर्म सभा भी होय।
तीन सभा जब होयेंगी, प्रजा सुख से सोय ॥

३३९–छः पीढ़ी मां की तजे, पिता गोत्र दे छोड़।
कन्या सौम्य सुशील हो, उस से नाता जोड़ ॥

३४०–दुहिता इसका नाम है, दूर देश की होय।
पति पत्नी में प्यार हो, दुखी रहे ना कोय ॥

* छन्द नं०—२३६ *

जो जो वस्तु जाने वो ही समझो उसका ज्ञाता है।
जिसके द्वारा जानो जावे ज्ञान वही कहलाता है॥
जिस वस्तु को जानी जावे ज्ञेय नाम से आता है।
ऐसा जानन वाला धर्मी जग में जीव कहाता है॥

* छन्द नं०—२३७ *

जो कुछ भी जो कर पायेगा कर्ता नाम कहायेगा।
जिस साधन से कर्म करेगा करण नाम कहलायेगा॥
करने का ही नाम है क्रिया जो कुछ भी कर पायेगा।
ऐसा धर्मी जीव जगत में अन्य जीव समझायेगा॥

* छन्द नं०—२३८ *

गुरु जनों के सन्मुख जाकर खड़ा होय सतरावे ना।
चाचा ताऊ दादा जी को कड़वे बोल सुनावे ना॥
सम्बन्धी हो चाहे प्यारा बिना बुलाये जावे ना।
साथ में साथी सुत के हों जब तब धर्मी धमकावे ना॥

* छन्द नं०—२३९ *

कुश का हो या हो मृग छाला आसन तले बिछाया कर।
एक जगह एकान्त बैठ कर ध्यान ईश का लाया कर॥
इन्द्रियों को वश में करले मन ना कहीं डुलाया कर।
अन्तःकरण की शुद्धि कर ले योगी सिद्ध कहाया कर॥

* छन्द नं०—२४० *

ध्यान निरन्तर जो जन करता मन ना कहीं डुलाता है।
परमेश्वर का रूप है जैसा अपना रूप बनाता है॥
चलता फिरता खाता पीता गीत उसी के गाता है।
ऐसा योगी निश्चय धर्मी, परम धाम को पाता है॥

* छन्द नं०—२४१ *

योग भ्रष्ट योगी मर करके स्वर्ग लोक में जाता है।
उत्तम पुरुषों के ही घर में जन्म आन कर पाता है॥
पहले साधन किया योग का उसको ही अपनाता है।
विषियों का ना बन्धन धर्मी उसको फेर सताता है॥

* छन्द नं०—२४२ *

तपेश्वरी कितना ही तपले योगी बड़ा कहाता है।
वेद शास्त्र के विद्वानों में ऊंचे पद को पाता है॥
योगी जनों में श्रद्धा वाला योगी पूजा जाता है।
धर्मी गीत ओम के गा, क्यों गीत जनों के गाता है॥

* छन्द नं०—२४३ *

बिना विधि के अन्न खाय जो तामस अन्न कहाता है।
श्रद्धा हीन बिना मन्त्री के जो कोई यज्ञ कराता है॥
ना कुछ देय दक्षिणा जिसकी फल उसका ना पाता है।
ऐसा यज्ञ, यज्ञ ना धर्मी, गीता ग्रन्थ बताता है॥

* छन्द नं०--२४४ *

ऐसा कोई विद्वान नहीं जो सब जन का हितकारी हो।
ऐसा कोई हितैषी ना जो विद्या का भण्डारी हो॥
दोनों गुण वाला दुर्लभ है जो पूजा का अधिकारी हो।
ऐसी औषध दुर्लभ रुचिकर खाय दूर बीमारी हो॥

* छन्द नं०--२४५ *

नौका से गर नौका बाँधे परली पार न जाता है।
अन्धा ले अन्धे को धावे नहीं ठिकाने आता है॥
कीचड़ सना हाथ कीचड़ से साफ नहीं हो पाता है।
विद्याहीन गुरु शिष्यों का तम ना दूर हटाता है॥

* छन्द नं०--२४६ *

परमेश्वर है अति सूक्षम जीव के माँहि समाया है।
उस से बड़ा न दूजा कोई ना कोई तुल्य बताया है॥
इस कारण समता से भी वृद्धि से रहित कहाया है।
धर्मवीर तप कर-कर हारे पार नहीं कुछ पाया है॥

* छन्द नं०--२४७ *

ईश्वर व्यापक न्यारा सब से बन्धन में ना आता है।
सब सृष्टि का नाश होय तब नाश नहीं हो पाता है॥
दर्पण शुद्ध होय तब सब को सुन्दर चित्र दिखाता है।
अन्तःकरण शुद्ध हो धर्मी, दूर न देखन जाता है॥

* छन्द नं०--२४८ *

श्रद्धा रहित कार्य कोई ठीक नहीं कर सकता है।
जो कोई कहे करूं मैं निश दिन व्यर्थ बात यह बकता है॥
बिना बताये मारग चलकर भटक-भटक कर थकता है।
गुणी कहे सब अवगुण अपने और के अवगुण ढकता है॥

* छन्द नं०--२४९ *

जिसको सद उपदेश सुहावे उसको नित करना चहिये।
अन्धकार में फंसे हुये जो तिमिर सभी हरना चहिये॥
सत्य मार्ग में चलकर धर्मी, कभी नहीं डरना चहिये।
अन्न अधिकारी से लड़ करके व्यर्थ नहीं मरना चहिये॥

* छन्द नं०--२५० *

धर्मी-धर्मी साथ में रहते कभी नहीं वे न्यारे हों।
ईश्वर भक्त जहां पर मिलजां उन सबको वे प्यारे हों॥
अन्तःकरण शुद्ध हो जाते ज्ञान भरे भन्डारे हों।
ईश्वर को आधार मानते ईश्वर पालन हारे हों॥

* छन्द नं०--२५१ *

धर्मी ब्राह्मण निजी मान की कभी न इच्छा करता है।
निज अपमान को अमृत समझे मान से निश दिन डरता है॥
धर्म के मारग चले चलावे कष्ट और के हरता है।
परं उपकार में जीवन बीते औरों के हित मरता है॥

* छन्द नं०--२५२ *

सृष्टि की जो रचना-रचता-रचना में ना आता है।
रचना के जो अन्दर आवे ईश्वर नहीं कहाता है॥
रचना रचे रहे उसमें भी बाहर भी वह पाता है।
सूरज में चमकीला धर्मी, अपनी चमक दिखाता है॥

* छन्द नं०--२५३ *

वेद मूल सब विद्याओं का ईश्वर सब का मूल कहो।
बुरे भले का स्वामी वो ही उलटा या अनुकूल कहो॥
सुख दुख का है दाता वो ही फूल कहो चहे शूल कहो।
जैसा करे भरेगा धर्मी, सूझ कहो चहे भूल कहो॥

* छन्द नं०—२५४ *

जैसे मकड़ी पूर के जाला बाहर भीतर रहती है।
इसी भांति से रहता ईश्वर सारी दुनिया कहती है॥
जड़ चेतन को ना पहिचाने इस कारण दुख सहती है।
चेतन छोड़ अचेतन पूजे उलटा मारग गहती है॥

* छन्द नं०—२५५ *

बुझी हुई अग्नि में 'धर्मी' घी सामग्री डालो ना।
तब तक धर्मी, बन्द रहो सब जब तक अग्नि वालो ना॥
शाम को अतिथि घर पर आवे धर्मी, उसको टालो ना।
गाय का पालन तजकर धर्मी, घर में कुत्ते पालो ना॥

* छंद नं०—२५६ *

निर्बुद्धि निर्धन जन जग में भार सदा ही ढोते हैं।
मानवता से दूर रहें सब जन्म व्यर्थ ही खोते हैं॥
धन वाले विद्वान सभी जन सुख की निद्रा सोते हैं।
मुक्ति के पाने वालों से ये भी नीचे होते हैं॥

* छंद नं०—२५७ *

राग द्वेष से भरा मनुष जो मुक्ति का पथ पावे ना।
मैं सुन्दर बलवान धनी हूं सज्जन सेवा ठावे ना॥
मद में चकनाचूर रहे गुण गीत ईश के गावे ना।
मनुज योनि में 'धर्मी' ऐसा जीव लौट कर आवे ना॥

* छंद नं०—२५८ *

जो जन कुवाँ बाग बगीचा विद्यालय खुलवाते हैं।
उसका फल इतना ही समझो मनुष योनि में आते हैं॥
जो जन कहीं एकान्त बैठकर ईश्वर के गुण गाते हैं।
'धर्मी' ऐसा अवसर आवे ईश्वर से मिल जाते हैं॥

* छंद नं०—२५९ *

यज्ञ कराने वाला 'धर्मी' धन से आदर मान करे।
उस अवसर पर दीन दुखी को जितना चाहे दान करे॥
आये हुये जनों का घर पर हाथ जोड़ गुणगान करे।
मुझ पै जो है सभी प्रभु का सब से सत्य बखान करे॥

❋ छंद नं०—२६० ❋

सूक्षम लक्ष्य बींधने वाला नित ही तीर चलाता है।
अति सूक्षम ब्रह्म पै मन भी काफी समय लगाता है॥
बार-बार मन विचलित होता नहीं ठिकाने आता है।
अपने लक्ष्य को निश्चय 'धर्मी' नित अभ्यासी पाता है॥

❋ छंद नं०—२६१ ❋

कौन बता स्थान जहां पर ईश्वर नहीं समाया है।
कौन बता वह पवित्र आत्मा जिसने उसे न पाया है॥
कौन बता उसको पाकर ना विषियों को ठुकराया है।
कौन बता कुकरम को करके 'धर्मी' नाम धराया है॥

❋ छंद नं०—२६२ ❋

जिसका चित्त ब्रह्म में रहता ब्रह्म-ब्रह्म ही कहता है।
सब कालों में सभी दशा में याद ब्रह्म ही रहता है॥
ब्रह्म प्राप्त का मारग तज कर वाट और ना गहता है।
किसी जीव को किसी रूप में 'धर्मी' कभी न दहता है॥

❋ छंद नं०—२६३ ❋

भोग्य भोगता जड़ चेतन दो भाँति जगत कहाता है।
चेतन दो आपस में जिनका पिता पुत्र का नाता है॥
पिता है व्यापक अन्तर्यामी सब सुक्खों का दाता है।
जन्म मरण और हर व्याधि का पुत्र ही कष्ट उठाता है॥

※ छंद नं०–२६४ ※

ईश्वर ही आनन्दी है आनन्द उसी में पाता है।
योग साधना करके ध्यानी निकट प्रभु के जाता है॥
मुक्ति में रह करके 'धर्मी' ईश्वर नहीं कहाता है।
मुक्ति की अवधि कर पूरी जन्म मरण में आता है॥

※ छंद नं०--२६५ ※

मुक्ति पाना है तो 'धर्मी' सत्य मार्ग अपनाना है।
सत्य आचरण की नौका से पार किनारे जाना है॥
सब साथिन को सत्य मार्ग का सच्चा पाठ पढ़ाना है।
सत्य है ईश्वर, जीव, प्रकृति सब को सत्य बताना है॥

※ छंद नं०--२६६ ※

अन्तःकरण शुद्ध हो उसका जो तप करने हारा है।
वो ही ईश मिलन का मारग ठीक जानता सारा है॥
राग द्वेष से भरा हुआ जो फिरता मारा-मारा है।
'धर्मी' धर्म धारणा धर के पावे पार किनारा है॥

※ छंद नं०--२६७ ※

ईश्वर जीव प्रकृति तीनों बने न मिटने पाते हैं।
ईश्वर सबका स्वामी है और सेवक जीव कहाते हैं॥
प्रकृति के द्वारा ईश्वर सारा जगत रचाते हैं।
कितने जीव फंसे हैं, कितने छूट मोक्ष को जाते हैं॥

* छंद नं०—२६८ *

परम पिता के सम दुनियाँ में कोई जन भरपूर नहीं।
अनगिन यन्त्र किये हैं जन ने पर उस जैसा नूर नहीं॥
सब से निकट दूर है इतना उससे सम कोई दूर नहीं।
बल में बली हुए बहुतेरे पर उस जैसा शूर नहीं॥

* छंद नं०—२६९ *

बुद्धि का विस्तार होत है जिनके सर पर चोटी हो।
गाय सुता का खुर जितना हो उतनी चोटी मोटी हो॥
जिसकी बुद्धि ठीक रहे फिर घड़ी आय क्यों खोटी हो।
सारे कारोबार ठीक हों सुख से खाता रोटी हो॥

* छंद नं०—२७० *

तीन आश्रम अन्दर 'धर्मी' बिना जनेऊ रहना ना।
तन पर वस्त्र धार मत धारे इस से बढ़िया गहना ना॥
अन्ड वृद्धि बवासीर का उसको दुखड़ा सहना ना।
बुद्धि वाले सब समझेंगे मूरख का कुछ कहना ना॥

* छंद नं०—२७१ *

जिस भाँति से नर ब्रह्मचारी योगी और संन्यासी हो।
उसी भाँति से स्त्री निश दिन योग कर्म अभ्यासी हो॥
दोनों के लिये योग योग्य है दास होय या दासी हो।
पुरुष समान स्त्री 'धर्मी' मोक्ष धाम की प्यासी हो॥

* छंद नं०--२७२ *

काली गऊ का दूध पिओ तो वायु नहीं सतायेगी।
श्वेत गऊ का दूध पिओ तो बल बुद्धि बढ़ जायेगी॥
पीली का गर दूध पिओ तो गर्मी निकट न आयेगी।
लाल रंग की गौ सभी के सारे रोग भगायेगी॥

* छंद नं०--२७३ *

गौ दुग्ध से पेट की अग्नि तीव्र गति को पाती है।
दही का सेवन बलवर्धक अरु फुरती अधिक बढ़ाती है॥
तक्र नष्ट रोगों को करके उत्तम स्वास्थ्य बनाती है।
धर्मी सबको समझाता पर सबकी समझ न आती है॥

* छंद नं०--२७४ *

गऊ मूत्र से आंख जो धोवे जीवन भर पढ़ पावेगा।
खुजली उसके निकट न आवे गाय को नित्य खुजावेगा॥
गऊ गोबर से चौका लाओ प्लेग वहां ना आवेगा।
गऊ गोबर से खाद डालकर पैदा खूब बढ़ावेगा॥

* छंद नं०--२७५ *

एक पिता के पुत्र, अनेकों गुण वाले बन जाते हैं।
कोई तपस्वी ज्ञानी दानी, शूरवीर कहलाते हैं॥
कोई धार्मिक पंडित होते पिता की सेवा ठाते हैं।
धर्मी सबके कर्म हों न्यारे फल भी न्यारे पाते हैं॥

* छंद नं०--२७६ *

गुरू करे जो भोजन उस से अच्छा खाना ना चहिये ।
गुरू के संग में गुरू से उत्तम वेष बनाना ना चहिये ॥
बिना निहलाये गुरू से पहले शिष्य को न्हाना ना चहिये ।
बिना गुरू की आज्ञा धर्मी, कहीं को जाना ना चहिये ॥

* छंद नं०--२७७ *

धर्मवीर छः भाँति के जन शिक्षा के अधिकारी हों ।
राहगीर गुरू पालक होवें, संन्यासी ब्रह्मचारी हों ॥
विद्या के अभिलाषी होवें, धनं बिन अधिक दुखारी हों ।
ऐसे जन को सदा ही देवें धन के जो भन्डारी हों ॥

* छंद नं०--२७८ *

सूर्य भूमि चन्द्र व तारे सारे चक्र लगाते हैं ।
सूर्य अपनी जगह और सब इसका फेरा लाते हैं ॥
चन्द्र बीच में आ जावे तो सूर्य ग्रहण बताते हैं ।
भूमि बीच में आ जावे ना चन्दा चमक दिखाते हैं ॥

* छन्द नं०--२७९ *

आयु के वैद्यक ग्रन्थों में चार भाग बतलाये हैं ।
वृद्धि, यौवन, सम्पूर्णता, हानी चतुर्थ कहाये हैं ॥
कुमार चौबीस ग्यारह चौका यौवन अन्दर आये हैं ।
अड़तालिस की पूरी आगे हानी वर्ष बतायें हैं ॥

*** छन्द नं०--२८० ***

जहां पर भारी काँस खड़ा हो वहाँ पर खेती क्यारी हो ।
जिसके तन में बालापन से लगी साँस बीमारी हो ।।
बनियाँ से हो लैन दैन और पंडित के संग यारी हो ।
ऐसे जन की निश्चय धर्मी, जीवन भर ही ख्वारी हो ।।

*** कवित्त नं०--१२० ***

हृदय हो पवित्र और इन्द्रियों का दमन भी हो,
बाहर भीतर शुद्धि और सत्य का पुजारी हो ।
दीनों पै हो दया और नम्रता का भाव भी हो,
ईश्वर का हो भक्त और ज्ञान का भन्डारी हो ।।
परा और अपरा विद्या भली जाँति जानता हो,
ईश्वर की बनाई सृष्टि सभी उसे प्यारी हो ।
धर्मवीर ऐसे गुण स्वभाविक ही पावें जिसमें,
वो ही ब्राह्मण होवे और पूजा का अधिकारी हो ।।

*** कवित्त नं०--१२१ ***

हृदय हो विशाल और भाल पै हो तेज जिसके,
धीरज का हो धनी और वीर बलकारी हो ।
चतुरता में चतुर इतना दूसरा ना सानी मिले,
दीनों को दे दान और ईश्वर भक्ति प्यारी हो ।।
युद्ध क़ा लड़ैया इतना किसी से ना हार माने,
देख करके चकित जिसे शत्रु सैना सारी हो ।

प्रजा के जो ऊपर अपनी सदा छत्र छाया रखे,
'धर्मवीर' ऐसा निश्चय क्षत्रिय छत्र धारी हो ॥

* कवित्त नं०—१२२ *

खेती की जो विद्या उसे भली भाँति जानता हो,
गौवों का हो पालन और लैन दैन भारी हो ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सदाँ तीनों में व्यापार करे,
छोटा हो या बड़ा सब से सत्य का व्यवहारी हो ॥
'धर्मवीर' ऐसे कर्म स्वभाविक ही पावें जिसमें,
वो ही जन वैश्य भामा शाह सा भन्डारी हो ।
ऊपर के जो वर्ण उनकी सेवा सदा करता रहे,
वो ही सच्चा शूद्र जिसे सेवा वृत्ति प्यारी हो ॥

* कवित्त नं०—१२३ *

अमृत के समान सुख भी विष के तुल्य दीखता है,
जबकि कोई कार्य आरम्भ किया जाता है ।
कठिनाई को सहन करके कार्य को करता रहे,
फेर वो हो विष भरा अमृत सम कहाता है ॥
भगवत का जो भजन भाव नैक मन को भावे नहीं,
भा जाने पर रात दिना गीत उसके गाता है ।
'धर्मवीर' इस भाँति का सात्विक सुख कहा जाता है,
ऐसे सुख को सहस्त्रों में कोई जन पाता है ॥

* कवित्त नं०—१२४ *

इन्द्रियों के मेल से जो जितना सुख होता जिसे,
कई गुणा कुछ दिन पीछे दुःख उसे होता है।
मूढ़ मनुज अमृत के सम समझ उसे करने लगे,
करने के पश्चात फेर मूंड़ पकड़ रोता है॥
जैसा करे वैसा भरे ईश्वर का है न्याय ऐसा,
वैसा ही वो काटे जैसा जो कोई भी बोता है।
'धर्मवीर' ऐसे सुख को राजस सुख सभी कहें,
जिसमें फंसकर जीवन भर ही खाता रहे गोता है॥

* कवित्त नं०—१२५ *

कितने भोग ऐसे भी हैं जीवन भर ही भोगते हैं,
दिवस हो या रात उसी भोग में बिताते हैं।
जैसे निद्रा जैसे आलस सुख ही इनमें भासता है,
आलसी प्रमादी सदाँ औरों को सुनाते हैं॥
किन्तु इनमें सभी जन की आत्मा का हनन होता,
इसीलिये भले जन ना इन्हें अपनाते हैं।
देखने में सुख, दुख भोग है महान इनका,
'धर्मी' जन ऐसे सुख को तामस का सुख गाते हैं॥

* कवित्त नं०—१२६ *

धैर्य को धारण करे, सुख दुख हानी एक से हों,
मन में अहंकार नहीं सात्विक कहाता है।

राजसी है लोभी, हर्ष शोक में ही फंसा रहे,
हिन्सा की हां वृत्ति सदा दीनों को सताता है ॥
तामसी घमन्डी धूर्त दूसरों की हानी करे,
शिक्षा से ही दूर बात देरी से बताता है।
रजो सतो तमो गुण 'धर्मवीर' तीन ही हैं,
तीनों की हो सुनें सदा तीनों को सुनाता है ॥

* कवित्त नं०—१२७ *

सभी कारण परम पिता परमेश्वर में जमा रहते,
उन्हीं कारणों से सृष्टि समय पर रचाता है।
सब से पहले नभ मन्डल में प्रमाणु इकट्ठे करे,
जहाँ हो आकाश वहाँ वायु को चलाता है ॥
वायु से ही अग्नि और अग्नि से जल त्यार होता,
फेर बना पृथिवी को अन्न उपजाता है।
अन्न से हो वीर्य और वीर्य से देह बने,
'धर्मवीर' इस भाँति से नियम को निभाता है ॥

* कवित्त नं०—१२८ *

प्राण हों बलवान जिसके सब कामों को ठीक करे,
निर्बल प्राण वाला सदा कष्ट ही उठाता है।
उत्पत्ति और प्रलय समय प्राण ही है रक्षक सबका,
वायु करे वर्षा और अन्न उपजाता है ॥
जड़ और चेतन सभी वायु के आधार पै हैं,

बिना वायु नहीं कोई क्रिया कर पाता है।
प्राण हैं तो, प्यारे सब के 'धर्मवीर' सभी जाने,
बिना प्राण वाला पड़ा घर में ना सुहाता है॥

*** कवित्त नं०–१२६ ***

बुरे भले कर्म फल भोगने के हेतु सदा,
प्राणों के ही साथ जीव देह धारी होता है।
आँख कान नाक मुख निकला वायु प्राण ही है,
वायु बिन अपान, मल मूत्र भारी होता है॥
बहत्तर करोड़, लाख बहत्तर हजार दस,
दो सौ एक नली होतीं, नाम नारी होता है।
नाम है उदान वायु सुषुम्णा में घूमता है,
देह जीव मिला अलग करने हारी होता है॥

*** कवित्त नं०–१३० ***

प्राण हैं समान जो कि नाभि अन्दर ठहरता है,
उस ही के द्वारा श्वास नीचे ऊपर आता है।
मरते समय भावना भी वैसी ही बनें हैं उसकी,
जैसे-जैसे कर्म अपने जीवन में कर पाता है॥
जो भी जन गति विधि सब प्राणों की जानता है,
वो ही योगी योग के अभ्यास को बढ़ाता है।
जो भी ज्ञानी प्राण विद्या ठीक-ठीक जानता है,
वो ही ज्ञानी [illegible] जन्म से जाता है

* कवित्त न०—१३१ *

अ, उ, म, तीनों से मिलकर ओम् नाम श्रेष्ठ बनें,
योगी जन बैठ कहीं करे इसका जाप है।
जागते सुषुप्ति, स्वप्न तीनों दशा योगी जन,
उस ईश्वर का जाप करें कटता जिससे ताप है।।
निर्बलता अरु मृत्यु का भय योगी को सतावे नहीं,
विकारों से रहित होता जैसा ईश्वर आप है।
आने और जाने का जो बन्धन है वह छूट जाये,
'धर्मी' तू भी वैसा ही बन जैसा सब का बाप है।।

* (१६ कला) कवित्त नं०—१३२ *

जीवों का हो जीवन सुख में कार्य सब सिद्ध होवे,
इस कारण से जगत सोलह कला का बनाया है।
प्राण और श्रद्धा, नभ चौथा पवन जान लीजो,
अग्नि और नीर, सप्तम भूमि को रचाया है।।
इन्द्रियाँ हैं अष्ट, मन, अन्न दसवाँ जानों सभी,
वीर्य, तप, बारह मन्त्र तेरहवां बताया है।
चौदहवीं का नाम कर्म पन्द्रहवीं को मनुष कहें,
सोलहवीं का नाम 'धर्मी' नाम ही कहाया है।।

* कवित्त नं०—१३३ *

नेत्र जिसके निर्मल होते रूप का हो ज्ञान उसे,
अन्तःकरण शुद्ध जिसका उसको ब्रह्म ज्ञान हो।

साधनों के सञ्चय बिना यत्न करना व्यर्थ ही है,
लाभ नहीं होता उन्हें बल्कि उन्हें हान हो ॥
वाद और विवाद केवल पुस्तकों के द्वारा करें,
ऐसे वादियों को नहीं ईश्वर की पहचान हो।
'धर्मवीर' रात दिना यत्न चाहे लाख करो,
उसी को मिलेंगे ईश्वर जिसका उसमें ध्यान हो ॥

* कवित्त नं०—१३४ *

वाणि में भी वसा नहीं वाणी से जो वर्णन होता,
मन में सबके वसा मनके मनन में न आता है।
आँखों से ना देखा जाता, आँखें जिससे देखती हैं,
कान से ना सुने कान जिस से सुन पाता है ॥
प्राणों के जो वश में नहीं प्राण जिसके वश में सभी,
जिसे जैसा चाहे उसे वैसा ही चलाता है।
इन्द्रियों का विषय नहीं ज्ञान द्वारा जाना जाय,
सब में व्यापक सब से न्यारा ब्रह्म वह कहाता है ॥

* कवित्त नं०—१३५ *

अच्छा हो विद्वान जो कि दुर्व्यसनों से दूर होवे,
निर्लोभी सुशील होवे, पुरोहित जो कहाता है।
दो हों तो ऋत्विक और तीजे को अध्यक्ष कहें,
चार यदि हो जावें तो नाम और आता है ॥
होता अरु अध्वयु होवे, उदगाता अरु ब्रह्मा होवे,

बैठने का आसन इनका अलग अलग पाता है।
होता का हो पच्छिम आसन अध्वर्यु का उत्तर दिशा,
उदगाता का पूरब ब्रह्मा दक्षिण में लगाता है ॥

* कवित्त नं०–१३६ *

सिंह से पुरुषार्थ सीखो बगुला से लो ध्यान वृत्ति,
उठना भजन लड़ना खाना कुक्कुट ही सिखाता है।
वांचस से चतुराई भोजन अन्यों पै विश्वास ना हो,
जाती का दे साथ विषय भोग ना सुहाता है ॥
सोना उठना आशा सब्र शत्रु से लड़ाई करना,
स्वामी की सेवा में श्वान पूंछ ही हिलाता है।
स्वामी के भरोसे ना हो झूम झूम चाल चले,
'धर्मी' गर्मी सर्दी गधा एकसा बिताता है ॥

* कवित्त नं०–१३७ *

जिन कर्मों के करने में आनन्द व उमंग होती,
निर्भयता के साथ सदा सभी सन्मुख करता है।
पृथिवी से ले करके जो ईश्वर तक का ज्ञान करे,
ईश्वर आज्ञा पालन में ही भूमि पै विचरता है ॥
शम दम श्रद्धा तितिक्षा को नित्य प्रति धारण करे,
उपरति व समाधान हृदय में जो भरता है।
'धर्मवीर' चलता फिरता ईश्वर का ही ध्यान करे,
इन चारों के करने वाला मोक्ष में पग धरता है ॥

* कवित्त नं०—१३८ *

सूर्य और चन्द्र भूमि अनेकों ही लोक हैं ये,
नित्य प्रति घूमते हैं कैसे को घुमाता है।
वृक्षों आदि बीजों अन्दर कहां से है रंग भरा,
भाँति-भाँति गन्ध पुष्प सभी को सुहाता है॥
मानव के शरीर के हैं जोड़ तोड़ जहाँ तहाँ,
जब चाहे जहाँ चाहे वहीं मोड़ पाता है।
अनेकों है लोक यौनि जिन्हें नहीं देख पाते,
अनौखा है रचने वाला अनौखा रचाता है॥

* कवित्त नं०—१३९ *

गऊ माता, माता सबकी क्यों है माता ध्यान करो,
अंग प्रति अंग मां की भाँति ही बनाती है।
दूध के जो पीने वाला नम्र और ज्ञानी होवे;
दही मठा इसकी सभी रोगों को हटाती है॥
गोबर का जो काम करे दिक का रोगी होता नहीं,
रबड़ी व मलाई नेत्र ज्योति को बढ़ाती है।
घृत के जो खाने वाला अन्धा बहरा होता नहीं,
मूत्र है दवाई जिगर तिल्ली को भगाती है॥

* कवित्त नं०—१४० *

आठ है प्रमाण जिनके द्वारा निश्चय जाना जाय,
प्रथम है प्रत्यक्ष अनुमान आगे आता है।

तीसरा उपमान चौथा शब्द जो प्रमाण मानो,
पांचवां ऐतिह्य इतिहास जो कहाता है ॥
कारण को जो देख करके कार्य का ज्ञान होता,
अर्था पत्ति नाम उसका लिखा हुआ पाता है।
सृष्टि के अनुकूल जो है उसका नाम सम्भव जानो,
अष्टम है अभाव 'धर्मी' ढूंढा नहीं जाता है ॥

❋ छन्द नं०–२८१ ❋

पांच यज्ञ भव पार तरण को जिनको नित्य रचाया जा।
अग्नि होत्र नित सन्ध्या करना अपना नियम बनाया जा ॥
अतिथि जन अरु मात पिता को श्रद्धा सहित जिमाया जा।
किसी जीव को किसी समय भी 'धर्मी' नहीं सताया जा ॥

❋ छन्द नं०–२८२ ❋

सूरज जब उत्तरायण होवे उत्तम समय कहाता है।
पक्षों में हो शुक्ल पक्ष जो सबके मन को भाता है ॥
परिवारी प्रसन्न चित्त हों, विवाह समय कहलाता है।
कुछ का मत है सब ऋतुओं में पाणि ग्रहण हो जाता है ॥

❋ छन्द नं०–२८३ ❋

मधुपर्क हो, दही के अन्दर घी वा शहद मिलाया जा।
तीन गुणा हो दही शहद से ऐसे ही घृत बताया जा ॥
काँसे का वह पात्र हो जिसमें, इसको धरा धराया जा।
तीन बार में विवाह समय में मधु पर्क को खाया जा ॥

*** छन्द नं०—२८४ ***

वेद कहे वैसा ही करना 'धर्मी' धर्म कहाता है।
धर्म ही उसको कहते जग में जैसा शास्त्र बताता है॥
ऋषि मुनिन का किया कर्म भी धर्म के अन्दर आता है।
वह भी धर्म कहाता जग में प्राणि मात्र सुख पाता है॥

*** छन्द नं०—२८५ ***

शील स्वभाव सदा हो जिसका क्रोध पास में आता ना।
सत्य सदा सब ही से बोले प्राणि कभी सताता ना॥
नित्य नियम से सन्ध्या करता ईश्वर कभी भुलाता ना।
सौ वर्षों से पहले 'धर्मी' जगत छोड़ कर जाता ना॥

*** छन्द नं०—२८६ ***

जिसका उपसंहार नहीं वह मन्त्र मुक्त कहलाता है।
पाणि मुक्त जो धनवाँ द्वारा तीर चलाया जाता है॥
आदि अन्त दोनों हों जिसमें मुक्ता मुक्त कहाता है।
अमुक्त शस्त्र को देख के 'धर्मी' शत्रु निकट न आता है॥

*** छन्द नं०—२८७ ***

बुरे भले की जाँच करनियाँ जग अन्दर जन थोड़े हैं।
देश धर्म के लिये मरनियाँ जग अन्दर जन थोड़े हैं॥
आपत्ति में धीर धरनियाँ जग अन्दर जन थोड़े हैं।
दीन दुखी का दुःख हरनियाँ जग अन्दर जन थोड़े हैं॥

* छन्द नं०—२८८ *

वेद शब्द की धातु अन्दर विद धातु कहलाती है।
विद धातु के चार अर्थ हैं सत्ता, लाभ बताती है ॥
ज्ञान अर्थ चौथा विचार है बात समझ में आती है।
विद धातु ही मनुष मात्र का पूरा काम बनाती है ॥

* छंद नं०—२८९ *

निर्धन पाकर पारस पथरी फूला नहीं समाता है।
नेत्रहीन ज्योति को पाकर लीला लख हरषाता है ॥
योधा जब प्रफुल्लित होता, युद्ध जीत कर आता है।
'धर्मी' रसना में रस पाकर भारी मोद मनाता है ॥

* छंद नं०—२९० *

जो जन मात पिता अरु सुत को मार के मोद मनाता है।
ब्राह्मण बस्ती गौशाला का जो जन नाम मिटाता है ॥
जो जन त्रिया बालक मारें मित्र को जहर पिलाता है।
'धर्मी' ऐसा मूंढ मनुज जो नर्क कुन्ड में जाता है ॥

* छंद नं०—२९१ *

कभी चन्द्रमा किसी ऋतु में शीतलता को छोड़े ना।
जल जन्तु जल बिन ना जीवें ज्ञानी ममता जोड़े ना ॥
आपत्ति अनगिन चहे आवें व्रति व्रत को तोड़े ना।
ममता वाला मित्र मौत से 'धर्मी' मन को मोड़े ना ॥

*** छन्द नं०—२९२ ***

बिना वस्त्र के भूषण पहनों ना शोभा कुछ तन की है।
बिन वैराग भजन नहीं होता, चंचलता अति मन की है॥
बिन वर्षा बिजली चहे चमको ना शोभा कुछ घन की है।
बिना दान के 'धर्मी' शोभा ना घर में कुछ धन की है॥

*** छन्द नं०—२९३ ***

बुरे भोग का समय है जिसका उसको आनन्द आता क्या।
वायु का प्रकोप देह में चलना फिरना भाता क्या॥
बिच्छू का हो डंक देह में गाना उसे सुहाता क्या।
मदिरा पी मस्ती में चलता सन्मारग पै जाता क्या॥

*** छन्द नं०—२९४ ***

विषियों में फंसकर संन्यासी अपना नाश कराता है।
मदिरा पी निर्लज्ज बने ना, मोन जगत में पाता है॥
अहंकार में जो जन रहता ना वह गुणी कहाता है।
मूरख मन्त्री 'धर्मी' जिसका भूप शीघ्र मिट जाता है॥

*** छन्द नं०—२९५ ***

'धर्मी' इन से वैर बाँध कर जीवन भर पछताओगे।
मर्म को जाने, हाथ शस्त्र हो, कैसे प्राण बचाओगे॥
स्वामी, भाट, कवि के संग में कष्ट अनेकों ठाओगे।
वैद्य, मूर्ख, और पाचक के संग बिना मौत मर जाओगे॥

* छंद नं०—२६६ *

शुद्ध देश एकान्त बैठ कर आसन कहीं लगाया कर।
हृदय, नाभि, कन्ठ, नेत्र में मन को कहीं टिकाया कर॥
मन के स्थिर हो जाने पर परम पिता को पाया कर।
पा जाने पर उस मारग को सबको नित्य बताया कर॥

* छन्द नं०—२६७ *

दिन के पीछे रात, रात के पीछे दिन ही आता है।
जितने दिन का शुक्ल पक्ष हो उतना कृष्ण कहाता है॥
इस भाँति से सृष्टि का भी ईश्वर चक्र चलाता है।
अब सृष्टि है फिर प्रलय हो, सृष्टि फेर रचाता है॥

* छन्द नं०—२६८ *

जो जन जहाँ कहीं भी जावे नित ही चोरी करता है।
पर स्त्री से गमन करे अरु महा मोद में भरता है॥
दुष्ट कर्म कर ना सकुचावे प्राण देव के हरता है।
'धर्मी' ऐसा जो जन होता जन्म वृक्ष का धरता है॥

* छन्द नं०—२६६ *

'धर्मी' क्लेश पांच होते हैं उनके नाम सुनाते हैं।
प्रथम नाम अविद्या जिससे ठीक समझ ना पाते हैं॥
बुद्धि जीव एक ही समझे अस्मिता नाम बताते हैं।
राग, द्वेष अभिनिवेश पाँचवाँ मृत्यु से भय खाते हैं॥

* छन्द नं०—३०० *

सूर्य, चन्द्र अरु सब तारों में मानव आदि रहते हैं।
पृथ्वी, जल, नभ, अग्नि, वायु, वसु नाम से कहते हैं॥
इनमें रहकर कर्म करें अरु दुख सुख फल भी सहते हैं।
अनगिन 'धर्मी' धर्म करें अरु मुक्ति का मग गहते हैं॥

* छन्द नं०--३०१ *

पशु भी सोता जगता है अरु निशदिन पीता खाता है।
किसी पशु से डरता है और किसी को आप डराता है॥
बच्चे इतने पैदा करता मानव ना कर पाता है।
बिना धर्म के मानव 'धर्मी' महा पशु कहलाता है॥

* छन्द नं०--३०२ *

सद् उपदेश जहाँ सुनता है सुनकर तभी विचार करे।
तर्क के द्वारा निर्णय करते, निर्णय को स्वीकार करे॥
ऐसा जन ही 'धर्मी' निश्चय मानवता से प्यार करे।
पड़ी धार नैया को अपनी भवसागर से पार करे॥

* छंद नं०--३०३ *

व्यभिचारी झूठा जन जग में माँग माँग कर खाता है।
बिना पढ़ा जो माँग-माँग कर अपनी गुजर चलाता है॥
धर्म कर्म की देत दुहाई धन दूजे का पाता है।
बीच भंवर में डूब जाय, दाता को साथ डुबाता है॥

*** छंद नं०--३०४ ***

विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता ब्रह्म यज्ञ से आती है।
अग्नि होत्र से जल की शुद्धि जग को सुखी बनाती है ॥
अतिथि, मात, पिता की सेवा मारग सत्य दिखाती है।
भूत यज्ञ भी प्राणिमात्र हित श्रद्धा प्रेम बढ़ाती है ॥

*** छंद नं०--३०५ ***

ईश भजन को छोड़ मनुष जो गीत मनुष के गाता है।
चेतन से झगड़ा करता है जड़ को शीश झुकाता है ॥
दीन दुखी को धेला ना दे मठ में माल चढ़ाता है।
'धर्मी' वह जन अन्धकार हो, जन्म वहां पर पाता है ॥

*** (१४ विद्या) छंद नं०--३०६ ***

राग, रसायन, नृत्य गीत और चौथी अश्व सवारी हो।
ज्योतिष और वेदाँग, व्याकरण, वाणी बोले प्यारी हो ॥
ब्रह्मज्ञान, रथ हांकन, चोरी, बाण की विद्या न्यारी हो।
जल में तैरना, कला मारना देखे नगरी सारी हो ॥

*** (७ कमीन) छन्द नं०--३०७ ***

सात कमीन कहे जाते हैं, उनके नाम सुनाते हैं।
नाई, धीमर, धोबी, भंगी आगे और बताते हैं ॥
खाती और लुहार इन्हीं की गिनती अन्दर आते हैं।
'धर्मी' सप्तम कुम्भकार जो प्रजापति कहाते हैं ॥

※ (७ अन्न) छन्द नं०--३०८ ※

सप्त अन्न 'धर्मी' कहलाते उनके नाम सुनो सारे।
मक्का गैहूं, ज्वार, बाजरा सबको लगते हैं प्यारे॥
जौ और जई अधिक अन्नों में बल बुद्धि देने हारे।
मंडुवा अन्न सप्तवाँ समझो जिसमें गुण मिलते न्यारे॥

※ छन्द नं०--३०९ ※

एक समान काम हों जिनके एक समान कहे जाते।
काल पड़े संकट कोई, आवे उसमें सब ही दुख पाते॥
दरबारी जन जितने होते सबके सम होते नाते।
मरघट में सब शोक मनावें उत्सव में सब ही गाते॥

※ छन्द नं०--३१० ※

'धर्मी' दाँत बने रहते हैं दांतुन नित्य चबाने से।
पाचन शक्ति प्रबल होती नित्य नियम के न्हाने से॥
बल और बुद्धि दोनों बढ़तीं गौ घृत के खाने से।
चित में चिन्ता नहीं व्यापती गीत ईश के गाने से॥

※ कवित्त नं०--१४१ ※

मन व शरीर तीजा इन्द्रिय मिल जो काम करे,
ऐसा काम भावना ही प्रवृत्ति कहाता है।
जो भी मन काम करे मानसिक कहाता है वो,
मन और वाणी वाला वाचक नाम पाता है॥
तन, मन, इन्द्रिय, तीनों मिल करके जो काम करें,

शारीरिक व प्रवृत्ति भी नाम कहा जाता है।
मनसा, वाचा, कर्मणा का 'धर्मी' जो भी भेद होता,
गौतम ऋषि अपने न्याय शास्त्र में बताता है।।

* कवित्त नं०—१४२ *

तर्कस से जब तीर खींचे नाम है आदान उसका,
नाम है सन्धान जबकि धनवाँ पै चढ़ाता है।
मोक्ष है नाम उसका लक्ष पै जब छोड़ा जाय,
विनिबर्तन नाम जब है तीर को लौटाता है।।
प्रत्यन्चा अरु धनवाँ बीच भाग को स्थान कहें,
मुष्टि नाम अंगुली व अगूंठा को मिलाता है।
लक्ष वेध रहस्य मन्डल साथ साथ घूमता है,
चढ़ाना प्रयोग रक्षा प्रश्चित कर पाता है।।

* कवित्त नं०—१४३ *

घर की जो हैं गुप्त बात बाहर कभी कहे नहीं,
बाहर की बुराइयों को घर में कभी लावे ना।
पति कुल की कमी कभी पीहर जाकर कहे नहीं,
पित्र कुल की कमी कभी सासू को बतावे ना।।
सास, ससुर, अतिथि, साधु प्रथम भोजन पान करे,
इनसे पहले आप कभी कोई भोजन खावे ना।
जो जो वस्तु खाई सबने उन्हीं में से खावे आप,
उनसे अलग अपने लिये निराली बनावे ना।।

* कवित्त नं०—१४४ *

बिना सास आज्ञा कभी घर से बाहर जावे नहीं,
निजी अंग भाग किसी पुरुष को दिखावे ना।
धीमी धीमी चाल चले शीघ्र पग ठावे नहीं,
नीचे को लखाकर चले ऊपर को लखावे ना ॥
जिससे भी कुछ बात करे नीचे नैन करके करे,
हंस, करके बातें कभी किसी को सुनावे ना।
जगत का जो करता 'धर्मी' उसी पै विश्वास करे,
जादू टोना टुन मुन वाली स्त्रियों में जावे ना ॥

* कवित्त नं०—१४५ *

युवा और युवती होवें तब ही अपना ब्याह करें,
अपने अपने वर्ण में ही मेल को मिलाया जा।
ब्राह्मण हो तो ब्राह्मणी से क्षत्रिय क्षत्रिया के साथ,
वैश्य हो तो वैश्या के संग विवाह को रचाया जा ॥
विद्या से विहीन मतिमन्द महामूर्ख हो जो,
ऐसी ही हो नारी विवाह उसी से कराया जा।
गुण कर्मों के साथ 'धर्मी' विवाह सभी करते रहें,
गृहस्थ में रह करके सुख गृहस्थ का उठाया जा ॥

* कवित्त नं०—१४६ *

धर्म के जो हेतु गया पति परदेश कहीं,
आठ वर्ष बाट उस पति की निहारिये।

विद्या के जो लिये गया बाट देख षट वर्ष,
फेर पति और देखो उसको बिसारिये ॥
यश के लिये यदि गया इतनी ही प्रतीक्षा करे,
सब भाँति से मन को मार धैर्य को धारिये।
धन के लिये गया यदि तीन वर्ष बाट देख,
'धर्मवीर' पति करके संकट सभी टारिये ॥

* कवित्त नं०–१४७ *

दोनों का हो शील सम बुद्धि भी समान होवे,
रूप हो समान दोनों चरित्र के भन्डारी हों।
सत्य के हों प्रेमी दोनों मधुर भाषण करते रहें,
हृदय में हो दया भाव दोनों अहंकारी हों ॥
चोरी जुआ, मद्य, माँस दुर्गुणों के त्यागी होवें,
देश के कल्याण हित विद्या के प्रचारी हों।
जब जब मिलें, पृथक होवें, नमस्ते ही किया करें,
ईश्वर के हो भक्त 'धर्मी' यज्ञ के पुजारी हों ॥

* कवित्त नं०–१४८ *

शूद्र जितनी चोरी करे आठ गुणी करके उससे,
सबके सन्मुख सभा अन्दर सुना करके लिया जा।
वैश्य यदि चोरी करे उसकी करे सोलह गुणा,
सबके सन्मुख लेकर फेर लज्जित उसे किया जा ॥
क्षत्रिय जितनी चोरी करे बत्तिस गुणा उससे लेवे,

राजा के दरबार में ना मान उसे दिया जा ।
ब्राह्मण यदि चोरी करे उससे लेवे चौंसठ गुणा,
'धर्मी' और दूना लेवे जीने में ना जिया जा ॥

* (९ निधि) कवित्त नं०—१४९ *

नौ निधियों के नाम सुनो पदम महा पदम दूजा,
शख तीजा नौ निधि का नाम ही कहाया है ।
चौथी निधि मकर और पाँचवीं है कच्छप निधि,
छटी का मुकन्द नाम सभी ने बताया है ॥
सातवीं निधि है कुन्द अष्टम नील जान लेना,
खर्व नाम नौमी निधि लिखा हमें पाया है ।
इस भाँति से 'धर्मवीर' नाम सभी निधियों के,
अपनी अपनी कविताओं में कवि गण ने गाया है ॥

* (१५ ऋद्धि) कवित्त नं०—१५० *

प्रथम है अनुर्मिमत्व दूर तक की देखे सुने,
इच्छित रूप धारे दौड़ मन सम लगाता है ।
पर काया प्रवेश, मृत्यु अपने ही आधीन रहे,
गति हो स्वछन्द, साथ देवों का निभाता है ॥
छल का हो अभाव, संकल्प, त्रिकाल ज्ञानी,
दूसरे की मन की जाने, हार नहीं पाता है ।
दिनकर और नीर अग्नि, विष का जो प्रभाव होता,
ऋद्धि वाला रोक देता लेख ऐसा आता है ॥

* (५ कोष) कवित्त नं०—१५१ *

अन्नमय कोष त्वचा अस्थि का समुदाय दीखे,
प्राण मय कोष जिसमें सभी प्राण पाते हैं।
मनों मय कोष जिसमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं,
चौथा है विज्ञान मय ज्ञानी जन बताते हैं॥
बुद्धि अरु चित्त पांचों इन्द्रियाँ हैं ज्ञान वाली,
इस सातों को सभी चौथे कोष में गिनाते हैं।
पाँचवाँ आनन्द मय जिसमें जीव सुखी रहें,
इन पाँचों के द्वारा 'धर्मी' ईश गुण गाते हैं॥

* कवित्त नं०—१५२ *

गृहस्थी जन के लिये पाँच यज्ञ अनिवार्य हैं,
जिन्हें नित्य प्रति करना सभी को बताया है।
प्रथम ब्रह्मयज्ञ जिसे सभी जन सन्ध्या कहें,
दूजा देवयज्ञ अग्नि होत्र नाम आया है॥
तीजा यज्ञ पित्रयज्ञ पूजा माता पिता की है,
चौथा यज्ञ अतिथियों की सेवा का कहाया है।
पाँचवीं है भूतयज्ञ सेवा करना प्राणियों की,
'धर्मी' पाँचों करके धर्म गृहस्थ का निभाया है॥

* कवित्त नं०—१५३ *

चैत्र अरु वैसाख मास नाम है वसन्त ऋतु,
ज्येष्ठ अरु असाढ़ ऋतु ग्रीष्म की कहाती हैं।

श्रावण, भादों वर्षा ऋतु वर्षा धुवांधार रहें
शरद ऋतु क्वार कार्तिक सभी मन भाती हैं ।।
अगहन और पौष मास दोनों को हेमन्त कहें,
माघ फागुन शिशिर ऋतु शी शी करवाती है ।
'धर्मवीर' छओं को ही, जाड़ा, गर्मी, वर्षा कहें,
इस भाँति से छः की गिनती तीनों में समाती है ।।

* कवित्त नं०—१५४ *

मद्य, माँस, गन्ध, माला, रस, नारी, लाल मिर्च,
ब्रह्मचारी सातों में से किसी को अपनावे ना ।
आंखों में ना काजल और अंगों का ना मर्दन करे,
पग में पन्हा पहने नहीं छाता को लगावे ना ।।
काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, द्वेष छोड़ देवे,
नाचना अरु गाना तजे बाजे को बजावे ना ।
दूसरों की निन्दा और मिथ्या भाषण करें नहीं,
धूर्तों के संग में 'धर्मी' रात्रि बितावे ना ।।

३४१—'धर्मी' भोजन जब करे, पहले पग ले धोय ।
ऐसे जन की जगत में, आयु लम्बी होय ।।

३४२—जिस राजा के राज्य में, बढ़ें चोर अरु जार ।
'धर्मी' ऐसा भूप जो, जाय नरक के द्वार ।।

३४३-चार पदार्थ जगत में, 'धर्मी' वो ही पाय ।
श्रद्धा से पितु मात की, जो भी सेवा ठाय ।।

३४४–'धर्मी' नित मत जाइये, जंह पर आदर मान।
जीवन भर जो चाहता, पूजा का स्थान ॥

३४५–खोटी ही सन्तान हो, खोटे हों ढिग दाम।
समय पड़े पर आवते, 'धर्मी' दोनों काम ॥

३४६–पान सड़ा, घोड़ा अड़ा, विद्या को गये भूल।
फेरा ना कह दीजिये, व्यर्थ बढ़ावे तूल ॥

३४७–गधा उदासा प्यास से, जाता पथिक उदास।
लोटा उसका नाम है, करता पूरी आस ॥

३४८–जिसको पा पंडित बनें, वक्ता और कुलीन।
वित्त नाम उसका कहें, ना रहता फिर दीन ॥

३४९–अपने ही सारे बनें, शत्रु होंय हजार।
'धर्मी' जन सब जानते, कहते उसको प्यार ॥

३५०–जंह अभाव अन्याय भी, पास बसत अज्ञान।
'धर्मी' ऐसे मनुष की, पत राखे भगवान ॥

३५१–रूप, निडरता, स्वस्थता, जीवन का है सार।
इनका जो आनन्द ले, ब्रह्मचर्य व्रत धार ॥

३५२–वेद छोड़, आचार तज, हो आलस से प्यार।
अन्न भ्रष्ट निश्चय मिले, जीवन रहता ख्वार ॥

३५३–श्रेय प्रेय दो मार्ग हैं, उनको लीजे जान।
प्रेय मार्ग से दुख मिले, श्रेय से हो कल्याण ॥

३५४–हित अनहित के भेद को,अलग अलग ले जान ।
जिसके द्वारा जानता, उसको समझो ज्ञान ।।

३५५–अगन, पवन, जल, भूमि, नभ, पञ्चभूत हैं नाम ।
इन भूतों से इन्द्रियाँ, लेतीं अपना काम ।

३५६–उपलब्धि अरु ज्ञान को, बुद्धि ही लो मान ।
नाम अलग पर एक हैं, करते ऋषि बखान ।।

३५७–मात, पिता, गुरू वचन को, जो भी लेता धार ।
'धर्मी' निश्चय जानिये, होता भव से पार ।।

३५८–सूरज पृथ्वी बीच में, चन्द्र यदि आ जाय ।
तब 'धर्मी' संसार में, सूर्य ग्रहण कहलाय ।।

३५९–चन्दा सूरज बीच में, जब जब भूमि आय ।
चन्द्र ग्रहण 'धर्मी' कहें, चन्दा दीखे नाय ।।

३६०–आँख, कान, पग, हाथ, धन,नाक,जीभ अरु देह ।
राज दन्ड स्थान दस, एकादस है गेह ।।

३६१–लोभ, मोह, भय, क्रोध में, जो जन देत बयान ।
अज्ञानी अरु बाल सम, उनको झूठा जान ।।

३६२–सत्य सिद्ध जब होत है, मान जगत में पाय ।
जिसको जैसा जो कहे, वैसा ही हो जाय ।।

३६३–जब योगीं को होत है, प्रतिष्ठित अस्तेय ।
सांसारिक जो द्रव्य है, नहीं किसी से लेय ।।
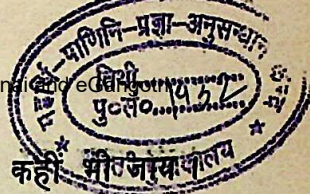
३६४–जिसको आसन सिद्ध हो, बैठ कहीं भी जाय।
गर्मी या सरदी पड़े, उसको नहीं सताय ॥

३६५–बिजली, अग्नि, सूर्य, ज्योति तीन महान ।
जिनके द्वारा जगत का, होता है कल्याण ॥

३६६–अपरा से संसार की, वस्तु लेते जान ।
ओम, प्रकृति, जीव की, परा से हो पहचान ॥

तीन भांति से धर्म का, होता 'धर्मी' ज्ञान ।
...य सदा धारण करे, कहे वेद, विद्वान ॥

३६८–साथी सुख में देखकर, मन में मोद मनाय ।
'धर्मी' ऐसा मनुष जो, स्वर्ग लोक में जाय ॥

३६९–मात, पिता, आचार्य चौथा अतिथि जान ।
चार देव, महादेव है, पन्चम ईश महान ॥

३७०–नर से नारी काम में, अष्ट गुणी कहलाय ।
'धर्मी' निश्चय जानिये; भोजन दूना खाय ॥

३७१–बिन कारण के जगत में, नहीं कार्य कोय ।
कारण में जो गुण बसें, कारज में भी होय ॥

३७२–'धर्मी' जिसको होत जब, पैसे के संग प्यार ।
प्यारा फिर लगता नहीं, इष्ट, मित्र, परिवार ॥

३७२–'धर्मी' सब संसार में, तीनों पै तकरार ।
कहीं जायकर देख लो, धन, धरणि अरु नार ॥

३७४–पैसा हो जब पास में, बनें अनेकों यार ।
कंगाली में रुष्ट हो, 'धर्मी' रिश्तेदार ।।

३७५–पैसा हो जब पास में, करले कुछ व्यापार ।
बिन पैसा के दीखता, सूना सब संसार ।।

३७६–सज्जन के ढिग में बसे, दुर्जन से रह दूर ।
जीवन भर सुख पायगा, गुण में हो भरपूर ।।

३७७–आठ पहर चौंसठ घड़ी, गीत ईश के गाय ।
'धर्मी' अपने मीत को, निश्चय वह जन पाय ।।

३७८–प्रथम सर को धोइये, जब तू 'धर्मी' न्हाय ।
प्रथम पानी पीजिये, जब-जब भोजन खाय ।।

३७९–ईश भजन करता नहीं, भक्ष्य करे बहु वार ।
'धर्मी' ऐसा मूंढ जो, जाय नरक के द्वार ।।

❋ भजन ❋

(एक शब्द के बहुत नाम, बहुत नाम की एक वस्तु)

सारंग नैंनी, सारंग बैनी, सारंग ले गई सारंग को ।
सारंग सारंग उलझ पड़े, तब सारंग ढाँपत सारंग को ।।
मृग–कोयल–स्त्री--दीपक–वायु–दीपक–स्त्री–दीपक
सारंग में सारंग अस्त भयो,सारंग ने समझ लई सारंग।
सारंग में सारंग सैर करे, सारंग से दुखी भई सारंग ।।
सारंग ने सारंग को धारा, सारंग पै चढ़ चलदई सारंग ।

सारंग ने सारंग को मारा, सारंग सम चली गई सारंग ॥
वन–सिंह–स्त्री–सिंह–वन–स्त्री–सिंह–स्त्री
स्त्री–खडग–अश्व–स्त्री–स्त्री–सिंह–सिंह–स्त्री

हर बोला हर ने सुना, हर पहुँचा हर पास ।
हर जब हर में धस गया, तब हर भया उदास ॥
मैंढक–सर्प–सर्प–मैंडक–मैंडक–जल–सर्प

आँचल ले आँचल चली, कर आँचल की ओट ।
आँचल हँना जानकर की आँचल ने चोट ॥
स्त्री–दीपक–वस्त्र–वस्त्र–वायु

सूर, सूर्य, सूरज, दिनकर दिनेश, दिवाकर मार्तन्ड भास्कर ।
सवितः, तर्णि, तरिण, रवि, भानु आदित्य, अगस्त, अंगोह ॥
चाँद-चन्द्र, चन्द्रमा, छपकर, कलाकर, सुधाकर, निशाकर ।
रजनीश–निशपति–सोम–इन्दु, मयंक, राकेश, शशि ॥

* भजन *

टेक–जिनमें ऐसे लक्षण पावें, जीवित ना वे मनुष्य कहावें,
मरे के समान हैं ॥

मदिरा मांस के भक्षण हारे और हाथी सम कामी जो ।
देश धर्म हित धेला ना दें ऐसे कृपण नामी जो ॥
मूर्ख मतिमन्द होवें, नित्य घरों में द्वन्द होवें,
झगड़े की रहठान हैं ॥१॥

अति द्ररिद्री अपमानित और अति आयु जो पाते हैं ।

बात-बात पर क्रोध करें कोई रोग में कष्ट उठाते हैं ॥
ईश्वर का न ध्यान करें, वेदों का न मान करें,
करते नित अपमान हैं ॥२॥

अन्य काम ना भावें जिनको तन का ही शृङ्गार करें ।
भले जनों में अवगुण लाकर निन्दा का प्रचार करें ॥
पुरुष और नार जहां, पापों से करें प्यार जहां,
नगरी ना श्मशान हैं ॥३॥

पर वश हो निर्वाह करें जो उनका भी क्या जीना है ।
यत्र तत्र फिरें मारे-मारे जन्म व्यर्थ ही खोना है ॥
'धर्मी' ना वे मनुष्य कहावें, धर्म कर्म को जो बिसरावें,
निर्बल क्या बलवान हैं ॥४॥
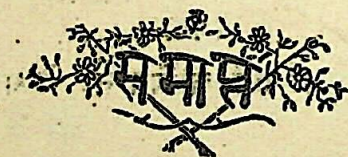
पुस्तकें मिलने का पता—
राधेश्याम आर्य, आर्य पुस्तक भण्डार, टटीरी मंडी (मेरठ)

मुद्रक : भारतीय प्रेस, ३०० स्वामीपाड़ा, मेरठ ।

* धर्मवीर आर्य कृत पुस्तकों की सूची *

कुछ शिष्यों के नाम—

१—अजलाल ढक नंगला पो० खैलिया जनपद बुलन्दशहर
२—रामवीर आर्य सालाबाद पो० दानपुर जनपद बुलन्दशहर
३—पूर्णसिंह आर्य चन्डौला पो० साधु आश्रम जनपद अलीगढ़
४—ब्रह्मचारी कड़कक्षेत्र गनौरा । श्यामवीर आर्य ढलना
५—रामचरणसिंह करनावल पो० खास जनपद मेरठ
६—ऋषिराम आर्य, उमेश आर्य नहटौर जि० बिजनौर

पुस्तक प्राप्ति के पते—

१—श्री धर्मपाल जी आचार्य गुरुकुल ततारपुर जि० गाजियाबाद
२—राधेश्याम आर्य, आर्य पुस्तक भन्डार टटीरी मन्डी (मेरठ)

मुद्रक : भारतीय प्रेस, २०७ स्वामीपाड़ा, मेरठ ।